सन्ध्या-विज्ञान

अर्थात्

Science of Sandhya

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥

लेखक:—

केशव शर्मा ।

संध्या विज्ञान

अर्थात्

SCIENCE OF SANDHYA.

लेखक व प्रकाशक—

केशव शर्मा,

गोपेश्वर. पो० चमोली (गढ़वाल)।

मुद्रक—

राजपण्डित देवरत्न शुक्ल,

भारत गो हितैषी प्रेस, पहाड़ी धीरज, देहली।

प्रथम बार २००० प्रति } सम्वत् १९९३. सन १९३६ { मू० १।) सजिल्द १॥)

पुस्तक मिलने का पता- -

शरद्चन्द्र शर्मा,

गोपेश्वर,

पो० चमोली, जि० गढ़वाल यू०पी०

P. O. CHAMOLI,

Distt. Garhwal U. P.

ओ३म्

प्राक्कथन

—:o:—

प्रिय पाठकगण !

मेरा बहुत समय से विचार था कि मैं अपने जीवन का आध्यात्मिक अनुभव जोकि एक प्रकार से अपने द्वारा सञ्चित कमाई के रूप में है, आपके सम्मुख रक्खूं। परन्तु कितने ही आकस्मिक विघ्नोंके कारण व वर्तमान कालके मौखिक पण्डितोंमें नामज़द न होने के कारण अपने इन विचारों को आपके सम्मुख न रख सका, जब जब किसी पुस्तक प्रकाशक से इस विषय में बातचीत की, तब तब यही उत्तर मिला कि नये और अप्रतिष्ठित लेखकों की पुस्तकों का प्रकाशन हम नहीं कर सकेंगे। मैं स्वयं धनाभाव के कारण प्रकाशित करने में असमर्थ था ही ! अस्तु-

मैं देहली आया, और अकस्मात श्री लाला दीनदयाल जी गुप्ता, नारनौल निवासी की अनुपम आर्थिक सहायता से अब आपके सम्मुख उन विचारों को इस रूप में ला सका हूं, जो आपके हाथ में हैं। इसमें क्या है ? यह तो आप इसको स्वयं ही पढ़ तथा विचार कर जान सकेंगे। मैंने अपने व्यतीत जीवन को आध्यात्मिक तत्व के जानने में ही लगाया है ; और जान बूझकर लगाया है वह भी किसी अन्धविश्वास पर नहीं, अपितु वेद प्रतिपादित, शास्त्र सम्मत, ऋषि महर्षि निर्दिष्ट, "संध्या" साधन द्वारा। मैंने इस पथ का अनुसरण करके वास्तव में उस परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का अनुभव और प्रत्यक्ष किया है,

इसका मतलब यह नहीं कि किसी महान् आत्माओं ने आकर मुझको दर्शन दिये हों। मैं परमात्मा का स्वरूप चैतन्य तत्व मानता हूं; और यह समझता हूं कि संध्या साधन में संलग्न कोई भी भक्त जब आत्मा में एक प्रकार का अपूर्व आनन्द और आल्हाद का अनुभव प्राप्त करता है, तो वह सचमुच उस आनन्दमय परमात्मा का दर्शन कर रहा है, अर्थात् जो सांसारिक त्रितापों से उन्मुक्त है वह ही सच्चा जीवनमुक्त है।

अब प्रश्न यह है कि उस अव्यक्त तत्व को जिसे भिन्न २ धर्म और मजहब भिन्न २ रूपों से उपस्थित करते हैं और उसके प्राप्त करने के लिए भी भिन्न २ मार्गों का उपदेश करते हैं उनमें से मैं इस वैदिक संध्या को ही क्यों पसन्द करता हूं? जबकि हिन्दू धर्म भी जोकि एक अध्यात्म प्रधान धर्म है इसके लिए भिन्न २ पथ बतलाता है, इसका उत्तर स्पष्ट है कि संध्या योग का वह महत्व पूर्ण अंग है जिसके बिना योग योग नहीं और योगी योगी नहीं। जो साधक संध्या साधना में अनुत्तीर्ण है वह योग ही क्या कर सकता है? सन्ध्या साधन ही योग है और योग ही सन्ध्या साधन है। केवल सन्ध्या के मन्त्रों का पाठ करने वाला सन्ध्या साधक नहीं बल्कि उसके एक २ मन्त्र भरे हुए विज्ञान और ज्ञान का अनुभव करके उन मन्त्रों के अर्थों पर विचार करके उसकी विधि के अनुकूल आचरण करने वाला सच्चा सन्ध्या साधक है और सच्चा योगी है।

इन सन्ध्या मन्त्रों में सम्पूर्ण योग के अंग और अपूर्व विज्ञान ओत प्रोत है। जिनको कि मैंने अपने इस ग्रन्थ में स्थल २ पर लिखा है। यह ग्रन्थ मेरा पहला ही प्रयास है अतः



लेखक—श्री० पं० केशव शर्मा,
गोपेश्वर (गढ़वाल)।

Bharat Ganesh Press, Delhi

भाषाविद् पण्डित न होने से त्रुटियां रहना स्वाभाविक है, आशा है पाठकगण त्रुटियों पर क्षमादान देंगे।

फिर भी यदि आप इस पुस्तक को पढ़कर शुद्ध हृदय से सन्ध्या साधना में जुट जांय, तो मैं अपने परिश्रम को सफल समझूंगा।

विनीत—

केशव शर्मा

ओ३म्

शुभकामना

—:०:—

भारतवर्ष गुणों का आगार है, इस गये बीते समय में भी सात्विक पुरुषों का नितान्त अभाव हो, यह बात नहीं। जबकि वैश्यवर्ण प्रायः धन लोलुपता और स्वार्थ प्रियता के कारण साधारण जनता में बदनाम सा हो चुका है, तब भी इस धन संपन्न जाति में इसके अपवाद मिल ही जाते हैं।

इसका उदाहरण हमें इतिहास में स्थल २ पर मिलता है। महाराणा प्रताप अपने प्रतापी पुरुषार्थ परिश्रम को धनाभाव के कारण व्यर्थ समझ कर, हताश हो घर से निकल पड़ा था, पर वैश्य कुल-भूषण भामाशाह ने उसके साहस को न गिरने दिया; और अपनी अतुल सम्पत्ति का सहारा देकर प्रताप के प्रतापी विचारों व संकल्पों को ऊपर उठाए ही रक्खा।

मैं भी अपने घर से धनाभाव के कारण इस अध्यात्म ग्रन्थ की पाण्डु लिपि लेकर निकल पड़ा और अपने जीवन के इस परिश्रम को एक पल में व्यर्थ ही समझ बैठा। पर यह कैसे सम्भव था कि जिस परमात्म तत्व की निरन्तर खोज में परिश्रम किया गया हो उस परिश्रम को वह व्यापक तत्व (ईश्वर) सफल न होने दे, वह तो "कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः" (यजुः) का उपदेश करने वाला है। कर्म करना भी तो हमारा कार्य है फल तो परमात्मा समय पर स्वयं दे देता है।

संख्याविज्ञान



भक्तप्रवर श्री० दीनदयालजी अग्रवाल
फर्म ला० दीनदयाल मुरारीलाल
नया बांस, देहली।

Bharat Gan H[illegible] Press De[illegible]

बस वह तत्वाकर्षण ईश्वर मुझे देहली खींच लाया और उस ही की कृपा से मुझको भी ला० रामस्वरूप जी, श्री ला० दीनदयाल जी व श्री ला० विश्वम्भर दयाल जी के दर्शन हो गये और मैंने अपनी इच्छा उनके सामने रखदी। ये तीनों सहोदर भ्राता बड़े सज्जन, ईश्वर भक्त, दयालु और अध्यात्म से रुचि रखने वाले हैं। इन्होंने मेरी प्रार्थना को सुनकर इस पुस्तक के प्रकाशन का सम्पूर्ण आर्थिकभार अपने समर्थ कन्धों पर लेना स्वीकार कर लिया।

मैंने इसे भी उस अव्यक्त तत्व की कृपा का कारण समझा; और यह जाना कि भगवान अपने भक्तों की भावनाओं को सर्वदा पूर्ण करते ही हैं। मेरा विश्वास है, कि जहां भगवान् ने मेरी पुस्तक सम्बन्धी भावनाओं को इन त्रिमूर्त्तिओं के द्वारा पूर्ण किया है, वहां इन भक्तों की अध्यात्म-पिपासा की शान्ति के लिए भी यह ग्रन्थ एक उपयोगी सिद्ध होगा; और इस भक्ति-पथ पर चलने के लिये एक श्रेष्ठ पथप्रदर्शक (Light House) होगा। और इनका सम्पूर्ण परिवार और कुल इस संध्या विज्ञान के द्वारा आध्यात्मिक उपासना और प्राकृतिक सम्पत्ति भोग कर तथा अपने जीवन को सफल बनाकर उस अव्यक्तानन्द का अनुभव करेगा।

शुभेच्छुक-
केशव शर्मा

* ॐ तत्सत् *

उपोद्घात

—*:o:*—

श्री पं० केशव शर्मा भट्ट गोपेश्वर (गढ़वाल) निवासी अनुभवी, विद्याव्यसनी, साधनसम्पन्न पुरुष हैं। इस संध्या में आपने अपने सब अनुभवों को सरल शब्दों में जनता के संमुख रखने का प्रयत्न किया है। सबसे अधिक विशेषता यह है कि इस पुस्तक में साम्प्रदायिकता की गन्ध भी नहीं आने दी है। आज कल संध्या के ऊपर कई पुस्तकें निकल चुकी हैं किन्तु ऐसी सुन्दर, सरल, विशद व्याख्या से युक्त कोई भी पुस्तक हमारे देखने में नहीं आई, छोटी मोटी त्रुटियों का सुधार द्वितीय संस्करण में हो सकेगा। इसमें पौराणिक और आर्यसामाजिक दोनों प्रकार की संध्या का भी तुलनात्मक विवेचन किया गया है। प्रत्येक स्थल पर सरल और विशद व्याख्या द्वारा आध्यात्मिक आधिदैविक अथवा आधिभौतिक तत्व को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया गया है। योग के अष्टाङ्ग की भी बात आ गई है। सारांश तर्क दृष्टि से भी संध्योपासना की उपयोगिता सिद्ध की गई है। हम पं० केशव शर्मा भट्ट को इस स्तुत्य प्रयत्न के लिए बधाई देते हैं और आशा करते हैं कि आपको इस पुस्तक से संध्योपासन प्रेमी बहुत कुछ लाभ उठायेंगे। आज कल का शिक्षितवर्ग संध्योपासना की उपयोगिता में विश्वास नहीं रखता, प्रार्थना

के तत्व को नहीं समझता, वह भी एक बार इस पुस्तक को आद्योपान्त पढ़ जाने का कष्ट उठावे, इससे लाभ ही होगा——शुभं भूयात्।

नरदेव शास्त्री, वेदतीर्थ
ज्वालापुर
ज्येष्ठ शुक्ला त्रयोदशी
सम्वत् १९९३



किसी ने भी ऐसी पुस्तक न लिख सकी

—*:०:*—

ओ३म्

वाचस्पति M. A. B Sc.
विद्या वाचस्पति

आर्य साहित्य-विभाग
आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधिसभा
लाहौर ।

ति० १४—१—१९३९

मैंने 'संध्याविज्ञान' पुस्तक श्री केशव शर्मा जी के श्री मुख से आद्योपान्त सुना। पुस्तक बड़े परिश्रम से लिखी गई है। लेखक महोदय ने पुस्तक लिखने में न केवल समय ही खर्च किया है, अपितु संध्या पर योग सम्बन्धी जो उनके अपने अनुभव हैं, वे भी इस ग्रन्थ में अनेक स्थानों पर दिये हैं। बात वस्तुतः यह है कि संध्या विषय ही अनुभव का विषय है, और संध्या से पूरा लाभ तभी हो सकता है, जबकि संध्या के मन्त्रों को अपने जीवन में धारण किया जाय। लेखक ने यही बात स्पष्ट करने का पूर्ण प्रयत्न किया है।

अनेक स्थलों पर लेखक महोदय से मेरा मतभेद था, उन मतभेदों पर मेरा उनसे विचार विनिमय हुआ, उसका परिणाम यह हुआ कि वे कई विषयों में मेरे साथ सहमत हो गये। हमारे परस्पर विचार संघर्ष से मेरा विचार है कि ग्रन्थ और अधिक उपयोगी बन गया है चाहे किसी २ स्थल में मेरा अब भी उनसे मतभेद है, जैसे एक स्थल पर जो विचार उन्होंने वेद के सम्बन्ध

में प्रकट किये हैं, मैं उनसे सहमत नहीं हो सकता। परन्तु यह होते हुए भी इसमें सन्देह नहीं कि पुस्तक अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी : और प्रत्येक पाठक इससे अपनी अपनी अवस्था के अनुसार लाभ उठा सकेगा, और इसके अनुसार आचरण और संध्या करने से साधक का जीवन उन्नत होगा और आत्मा ऊंचा उठ जायगा।

लेखक के अनेक विचार सर्वथा मौलिक हैं और अपने ही अनुभव पर आश्रित हैं, इस से पूर्व के इस विषय के लेखक ने अपने ग्रन्थों में वे बातें नहीं लिख सकी हैं। मुझे तो यह प्रतीत हुआ है कि लेखक महोदय ने अपना जीवन इन विषयों को अनुभव करने और इस पुस्तक को उपयोगी बनाने में ही व्यय किया है। मैं लेखक महोदय के इस कार्य को प्रशंसनीय समझता हूँ और सब सज्जन महानुभावों का कर्तव्य है कि इनके उत्साह को बढ़ायें और आशा करता हूं कि इनकी पुस्तक को अपनाकर पाठक लाभ उठायेंगे।

वाचस्पतिः

हिन्दी साहित्य का गौरव

सनातन धर्म कालेज, लाहौर

मैंने श्रीयुत पं० केशवशर्मा जी लिखित 'संध्या विज्ञान' नामक पुस्तक को उनके मुख से ही आद्योपान्त सुना। पुस्तक सुनकर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ। यद्यपि संध्या के विषय में और भी कई पुस्तकें मैंने देखी हैं, परन्तु इस पुस्तक में उन पुस्तकों की अपेक्षा कई विशेषताएं हैं।

उक्त पण्डित जी ने संध्या के प्रत्येक अंग को लेकर विस्तृत विवेचना की है। और योग शास्त्र के अनुसार उनके अनुष्ठान की विधि और उनका फल भी लिखा है। सब से बड़ी बात यह है कि ग्रन्थकार महोदय स्वयं संध्योपासक हैं, और अपने लिखे अनुसार सन्ध्या करते हैं और उन्होंने प्रस्तुत पुस्तक में बहुत सी बातें अपने अनुभव की लिखी हैं।

इस पुस्तक के मुद्रित होने से हिन्दी साहित्य का गौरव बढ़ेगा और शान्ति की इच्छुक ईश्वर भक्त उपासना प्रिय जनता को बड़ा लाभ पहुंचेगा, ऐसी मैं आशा करता हूं।

इस प्रयास के लिये पण्डित जी हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं।

१२-२-३६ परमेश्वरानन्द शास्त्री
साहित्योपाध्याय, विद्याभास्कर ऋषिकुलस्नातक
प्रिन्सिपल

नास्तिकों को ज़रूर पढ़ना चाहिये

ओरियन्टल कालेज, लाहौर। २६-२-३३

पंडित केशवशर्मा जी की लिखित 'सन्ध्या विज्ञान' नामक पुस्तक को मैंने प्रायः साद्यन्त देखा है और विशेष २ स्थलों को इन्होंने मुझे स्वयं बांच कर भी सुनाया है।

इस विषय की यह पुस्तक एक प्रकार से अनोखी कही जा सकती है। धर्मप्रिय श्रद्धालु पुरुषों के यह देखने योग्य वस्तु है और नवीन सभ्यता और विज्ञान के अनुयायी नवयुवकों के लिये भी यह अत्यन्त उपयुक्त तथा सन्तोषप्रद जान पड़ेगी। यद्यपि स्थान २ पर दिये वैदिक मन्त्रों और उपनिषदादि वाक्यों के उद्धरण प्रायः संस्कार के योग्य हैं तथा भाषा में भी कहीं २ त्रुटियां हैं परन्तु पूर्ण आशा है कि मुद्रण के समय पर यह सब कुछ योग्य विद्वान् संशोधक की सावधानता से सर्वथा ठीक होजायगा।

मेरी तुच्छ सम्मति में यह पुस्तक आज कल के अपने धर्माचरण से विचलित बुद्धि हेतुवादी पुरुषों के लिये तो अत्यन्त उपकारक होगी, क्योंकि इसमें सब विषय प्रायः सरल रीति से समझाने का यत्न किया गया है, जिससे साधारण भाषा पढ़े पुरुष भी इससे लाभ उठा सकेंगे अच्छे सम्पादक के अवधान में मुद्रित होने पर ही इसका कलेवर स्फुट और स्वच्छ होसकेगा।

पंडित हरिचरण शास्त्री त्रैगर्तः
संस्कृताध्यापक।

ओ३म्

मैंने श्री पं० केशव शर्मा जी लिखित सन्ध्या विज्ञान पुस्तक की पाण्डुलिपि को पढ़ा और उनके मुख से सुना है। पुस्तक छपजाने पर भी उसको देखने का मुझको पर्याप्त अवसर मिला, मेरी यह सम्मति है कि यद्यपि इस विषयक कितनी ही पुस्तकें अब तक प्रकाशित हो चुकी हैं, परन्तु यह इस विषय पर अपने ढंग की निराली पुस्तक है। सब से महत्वपूर्ण बात यह है कि यह लेखक के निजी अनुभवों का पुञ्ज है और लेखक का अब तक का जीवन इस सन्ध्या साधना में ही व्यतीत हुआ है और इस विषय के स्वाध्याय में ही संलग्न रहा है। इसमें स्थूल से स्थूल और सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय व शंकाएं भलीभांति वर्णन करके समाधान रूप में रक्खी गई हैं। केवल पाठमात्र सन्ध्या करनेवालों को इससे शिक्षा लेनी चाहिये। सन्ध्या विहित आचमनादि विधि में जो विज्ञान तत्व भरा है, उसका भी भली भाँति वर्णन किया गया है। यह पुस्तक चारों आश्रमों के लिए अत्युपयोगी है। मैं इन्हीं स्थानों पर सैद्धान्तिक मतभेद रखते हुए भी उनके विचारों और परिश्रम की सराहना करता हूं कि जो त्रुटियां भाषा और प्रेस की हैं वे द्वितीय संस्करण में दूर कर दी जायेंगी।

भवदीय—
विद्याभास्कर ओम्प्रकाश शास्त्री
आर्योपदेशक,
आर्यसमाज चावड़ी बाजार,
देहली

५-६-३८

D. A.-V. College Research Department,

LAHORE 15-2-1935.

I had the pleasure of going through Pandit Keshava Sharma's 'Sandhya-Vijiana'. It is a book of its kind, dealing with 'Sandhya' in a scientific way ever attempted No doubt there exist thousand and one books on the subject, but Panditji's enterprise is of an extra ordinary kind. What pleased me the most is that the book is written soly on practical lines. There is nothing impracticable in it. Every chapter of the book is sure to make its way not only in the minds of Hindus but that of the whole humainty in General.

The book if published will occupy a unique place in the litrature in general and in the heart of those interested in the subject in particular.

I whole hearted by congratulate the author on his achievement and wish him every success in the field.

GANESH MANI, GHILDIAL,

Shastri.

धन्यवाद

सब से पूर्व मैं उस परम पिता परमात्मा का धन्यवाद करता हूं, जिनकी अपार कृपा से यह सब कुछ हुआ और पुस्तक इस रूप में आपके सम्मुख रख सका हूं।

इसके बाद श्री पं० नरदेव जी शास्त्री वेदतीर्थ आचार्य गुरुकुल महा विद्यालय ज्वालापुर का विशेष धन्यवाद है जिन्होंने मेरी तुच्छ प्रार्थना पर उपोद्घात लिखने की कृपा की है।

तदनन्तर उन पण्डित महोदयों का हृदय से धन्यवाद करता हूं, जिन्होंने इस पुस्तक की पाण्डु लिपि देखने आदि का कष्ट किया और अपनी अमूल्य सम्मतियां इस पुस्तक पर दीं। जिनमें श्री पं० वाचस्पतिजी M A. B. Sc विद्यावाचस्पति आर्य साहित्य विभाग लाहोर, श्री पं० परमेश्वरानन्द जी शास्त्री साहित्योपाध्याय विद्याभास्कर ऋषि कुल स्नातक प्रिंसिपल सनातन धर्म संस्कृत कालिज लाहोर, श्री पं० हरिचरण शास्त्री संस्कृत प्रधानाध्यापक ओरियन्टल कालिज लाहोर तथा विद्याभास्कर श्री पं० ओम्प्रकाश जी न्यायशास्त्री स्नातक म० वि० ज्वालापुर आर्योपदेशक देहली का हार्दिक धन्यवाद करता हूं जिन्होंने मेरी पुस्तक को यथा समय पढ़कर शुद्ध कराने का प्रयत्न किया है।

आर्यसमाज नया बांस देहली को भी हार्दिक धन्यवाद है जहां मुझे निवास के लिये सब सुविधायें दी गईं।

विनीत—
केशव शर्मा

शुद्धाशुद्धिपत्र ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८	१५	का	
११	६	निधार्ग्ति	निर्धारित
१२	१७	पहुने	पहुंचने
१६	६	१	
२१	१९	उद्दशय	उद्देश्य
२१	२५	भक	भूख
२२	१५	पद्यासन	पद्मासन
२५	२	न्यून्याधिक	न्यूनाधिक
२६	१०	भी	की
२६	२	ब्रृह्मानन्द	ब्रह्मानन्द
२९	२४	मूमि	भूमि
३१	१५	उद्देश	उद्देश्य
३३	६	प्राणयाम	प्राणायाम
३३	१६	उनाहा	उतनाही
३७	१४	शुपम्णा	शुषुम्णा
३७	१७	,,	,,
३९	१४	स्नायुयों	स्नायुत्र्यों
४०	४	कराना	करना
४५	१२	मन:	मन
४७	६	हीर्गा	होगी
४७	२२	अभीन	आधीन
४९	४	अन्तर्वान	अन्तर्वर्ती
५०	३	जीनार्कीण	जनाकीर्ण

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५२	६	हो	
५२	८	कृत्तार्थ	कृतार्थ
६८	५	करती	करता
७७	२	वरेण्य	वरेण्यं
७७	८	श्वितो	विश्वतो
८१	६	चत्तुमित्रस्य	चत्तुर्मित्रस्य
८१	१६	छियो	धियो
८३	११	गुफओं	गुफाओं
८४	१	भजन	भोजन
१०५	४	मुम्ल	मुभ्क
१०५	६	से	
१०९	७	त्रि कोणाकार	त्रिकोणाकार
१३०	१६	श्वासन	शवासन
,,	२०	,,	,,
१३८	२	शाक्षी	साक्षी
१४०	११	श्वासन	शवासन
१५४	१०	Enternal laws	Eternal laws
१५६	८	करता	
१५६	६	सामावस्ता	विषमावस्था
१५६	१४	निधान	विधान
१६०	१३	निर्मल को	निर्मल जलकी
१६६	१	ध्रुव	ध्रुवा
२१६	१७	Hepnatima	Hypnotism

विषय सूची ।

प्रस्तावना

वर्तमान धार्मिक शिक्षा

विज्ञानवेत्ता तुम्हें किसी बात को स्वयं प्रत्यक्ष किये बिना विश्वास करने को नहीं कहेगा। क्योंकि उसने कुछ विशेष बातें स्वयं प्रत्यक्ष कर अनुभव करके देखी हैं और उन पर विचार कर कुछ सिद्धान्तों पर पहुंचा है। जब वह उन सिद्धान्तों के ऊपर हमें विश्वास करने को कहेगा, तो समझना चाहिये कि सर्व साधारण मनुष्य के ऊपर उसने सत्यासत्य के निर्णय का भार छोड़ दिया है। प्रत्येक विज्ञान का एक निश्चित ध्येय होता है। जिसका सर्व साधारण मनुष्य समझ सके और इच्छा करने पर उसके सत्यासत्य का उसी समय निर्णय हो सके। जिस को निश्चित विज्ञान Exect Seince कहते हैं। उस सत्यता को लोग सहज ही में जान सकते हैं। क्योंकि उसको प्रत्येक वस्तु का निर्णय करना है, कि वह वस्तु सत्य है या नहीं? इसकी जांच पड़ताल स्वयं करके फिर दूसरे को विश्वास करने का कहेगा। तो अब यहां प्रश्न होता है कि इस प्रकार धर्म को भी कोई अनुभवनीय निश्चित भित्ति होनी चाहिये, जिसको उसी प्रकार वैज्ञानिक साधना प्रणाली से साक्षात् किया जा सके, इसका उत्तर देने के लिये हमें संध्या विज्ञान प्रस्तुत करना पड़ेगा।

संसार में धर्म निश्चय के विषय में जो कुछ शिक्षा मिलती है, वह केवल श्रद्धा और विश्वास के ऊपर है। विशेषकर वह भिन्न २ मतों की एक समष्टिमात्र है। इसी कारण से ही मतमतान्तरों में केवल परस्पर वादविवाद देखने में आता है। इसके अतिरिक्त ये मतमतान्तर भी केवल अन्ध विश्वासके ऊपर स्थापित हैं। क्योंकि किसी का ईश्वर सातवें आसमान पर और किसी का चौथे आसमान पर है, वह वहीं से फरिश्तों द्वारा संसार का शासन करता है। प्रत्येक वक्ता अपनी बात पर हमें विश्वास करने को कहेगा। लेकिन इन से कोई इस विश्वास का कारण पूछे तो वह कोई युक्ति या दलील देने में असमर्थ हो जाते हैं। इसलिये लोगों का धर्म व दर्शन शास्त्र पर विश्वास उठ गया है। तो भी हमारा कहना है कि जितने भी जिन देशों में धर्म हैं और जितने प्रकार के सम्प्रदाय हैं, उन सब के मूल में एक ही साधारण भित्ति टिकी हुई है। इस निर्णय पर पहुंचने पर मालूम होता है, कि यह सब मतमतान्तर एक सार्वभौम प्रत्यक्षानुभूति के आधार पर स्थापित हैं, या टिके हुए हैं।

अनुसंधान करने पर देख पाओगे कि ये धर्म दो श्रेणियों में बंटे हुये हैं। किसी २ धर्म की भित्ति शास्त्र भित्ति है और किसी २ की केवल शाब्दिक, श्रवण और विश्वास। जो शास्त्र-भित्ति पर स्थिर है, वह बहुत ही सुदृढ़ और अजेय है। क्योंकि शास्त्र तो एक ही सूत्र में स्पष्ट कहता है —

यतोऽभ्युदय निःश्रेयस सिद्धिः सधर्मः।

(वैशेषिक, सू० २)

अर्थात् जिस बात से इस लोक में अभ्युदय उन्नति तथा यश की प्राप्ति हो, तथा परलोक में मोक्ष मिले वही धर्म है। इस पर भगवान् मनु कहते हैं, कि—धैर्य, आत्म संयम, चोरी न करना, शरीर व मन की पवित्रता, इन्द्रियों को वश में रखना, बुद्धि बढ़ाना, ज्ञान प्राप्त करना, सत्य व्यवहार, क्रोध न करना, ये दश लक्षण धर्म के हैं। शास्त्रहीन धर्म प्रायः लोप होते जा रहे हैं और साथ ही कुछ नये भी खड़े होते जा रहे हैं। तो भी इन सम्प्रदायों में मूल में एकही मत की एकता दिखलाई देती है, जो उनके मूल पुरुषों का प्रत्यक्ष अनुभव है।

क्रिश्चियन लोग ईसा क्रिष्ट को ईश्वर का अवतार बतलाते हैं। परन्तु तुम यदि क्रिष्ट धर्म के मूल देश में पहुंच कर देखना चाहोगे तो तुम्हें स्पष्ट दिखाई देगा कि वह भी किसी प्रत्यक्षानुभूति के आधार पर स्थापित है। क्योंकि ईसा मसीह स्वयं कह गये हैं कि—मैंने भगवान के दर्शन किये हैं और उनके शिष्यों ने भी कहा था कि—हमने भगवान का अनुभव किया है। इस प्रकार सर्वत्र ही प्रत्यक्षानुभूति दिखलाई देती है। सबके सब धर्माचार्यों ने ईश्वर के दर्शन किये थे, उन सबने ही आत्मदर्शन किया था। परन्तु भेद इतना है कि प्रायः सब धर्मों में विशेष कर आधुनिकों में यह समस्या उपस्थित हुई है कि यह अनुभूतियां प्रत्यक्ष होनी असम्भव हो गई हैं। लेकिन भारतीय प्रत्यक्षदर्शी इस बात को मानने को तैयार नहीं होते, क्योंकि वह कहते हैं कि यदि संसार में किसी प्रकार के विज्ञान की कोई बात किसी ने किसी समय भी प्रत्यक्ष करके देखी होगी, तो हम उससे सार्वभौम सिद्धान्त पर पहुंच सकते हैं, कि पहले भी उसको जान सकने की सम्भावना थी और बाद को भी करोड़ों बार जान

सकने की सम्भावना बनी रहेगी। क्योंकि प्रकृति का एक बलवान अस्त्र है कि जो एक बार जाना जा सकता है, उसको अनेक बार जान सकने की सम्भावना बनी रहती है।

अनेक महा पुरुषों ने ईश्वर के दर्शन किये थे, उन सबने ही आत्म दर्शन किया था, उन सब को ही अपने अनन्त स्वरूप का दर्शन हुआ था, उन सबने ही अपनी भविष्य दशा को निहारा था, जो कुछ उन्होंने देखा था, उन्ही का वह प्रचार कर गये। महात्मा बुद्ध ने भी प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर धर्म की स्थापना की है। उन्होंने कुछेक सत्य सिद्धान्तों का अनुभव किया था, उन्होंने उनका दर्शन किया था, उन्हीं का उन्होंने संसार में प्रचार किया था। आर्य ऋषियों ने भी भगवान् के दर्शन किये थे, उसी प्रत्यक्षानुभूति के आधार पर शास्त्रों का निर्माण हुआ, वह उनको स्वर्णाक्षरों में लिख गये हैं, कि- हमने कुछ सत्य सिद्धान्तों का अनुभव किया है, जो प्रत्येक मानवात्मा को अनुभव में लाना होगा। इससे स्पष्ट हो गया है कि संसार में वर्तमान सबके सब ही धर्म प्रत्यक्षानुभूति के सुदृढ़ अनुभव पर स्थापित हैं, और उन महानुभावों ने अन्ध विश्वास करना महापाप बतलाया है।

संध्या विज्ञान के आचार्यों का धार्मिक तत्व प्रत्यक्ष करने का परामर्श

—:०:—

इसलिये संध्या विज्ञान के आचार्यगण दृढ़तापूर्वक कहगये हैं कि धर्म केवल पहले के धर्म प्रवर्तकों के कहने ही से स्थिर नहीं रह सकता, किन्तु प्रत्येक मनुष्य जब तक स्वयं इन अनुभवों को

प्रत्यक्ष न करले, तब तक कोई भी धार्मिक नहीं हो सकता है। जिस विद्या के द्वारा ये अनुभूतियां प्राप्त होती हैं, उसे "संध्या विज्ञान" कहते हैं। जब तक कोई धर्म के तत्व को स्वयं सिद्ध न करले, तब तक उसे धर्म की बात कहना ही वृथा है। इससे स्पष्ट हो गया है कि भगवान के नाम पर इतना लड़ाई झगड़ा और वादानुवाद क्यों हुआ करता है ? भगवान् के नाम पर जितनी खून खराबी हुई, उतनी और किसी बात पर नहीं हुई। इसका कारण एक मात्र यही है कि ये धार्मिकता के नाम पर लड़ने झगड़ने वाले भी धार्मिक सिद्धान्तों के अन्त तक नहीं पहुंचे। वह सबके सबही अपने पूर्व पुरुषाओं के कुछ देश काल और पात्र के अनुसार ही पृथक २ बाह्य आचार विचारों को लेकर ही सन्तुष्ट रहे और उन पुरुषों का दुराग्रह यह रहा कि सब ही लोग हमारे जैसा आचार व्यवहार स्वीकार कर धार्मिक बनें। जिसको आत्मदेव की अनुभूति नहीं और ईश्वर साक्षात्कार नहीं हुआ, उसको आत्मा या ईश्वर कहने का अधिकार ही क्या है ? क्योंकि ईश्वर हो तो उन्हें ईश्वर दिखाई देना चाहिये और अगर आत्मानाम से कहलाने वाली कोई हस्ती है, तो उसे साक्षात् कर लेना चाहिये। ऐसा न होकर केवल मारकाट, वाद विवाद और दंगा फिसाद करना हो तो ऐसे धर्म पर विश्वास न करना ही सर्व श्रेष्ठ है, क्योंकि खून खराबी करने वाले धार्मिकों से तो नास्तिक रहना ही अच्छा है।

वर्तमान समय के विद्याभिमानियों का यह विश्वास दृढ़ होता जा रहा है कि धर्म व दर्शन या परमपुरुष के अनुसन्धान मे लगना यह बच्चों कासा खेल है। दूसरी ओर जो अर्द्ध शिक्षित हैं, उनका भाव यह मालूम होता है कि धर्म व दर्शन शास्त्र

आदि की वास्तव में कोई आवश्यकता नहीं, किन्तु उनकी इतनी आवश्यकता अवश्य है, कि वे केवल संसार के हित साधना के लिये एक बलवान् संचालिनी शक्तिमात्र हैं। क्योंकि यदि लोगों का ईश्वर की सत्ता में विश्वास रहेगा तो लोग सत्य नीति परायण और परस्पर सद्भाव से बर्तने वाले सामाजिक बने रहेंगे। जिनका पहला विचार हो, उनके लिये कोई दोष नहीं दिया जा सकता है, क्योंकि उन्होंने धर्म के विषय में जो शिक्षा पाई है, वह केवल सारहीन पागलों के समान बकवास है। उनको तो उन्हीं शब्दों में विश्वास करने को कहा जाता है, जो प्रकृति का अनिवार्य्य कर्तव्य होता है। परन्तु दूसरी श्रेणी के मनुष्यों से हमें यह प्रश्न करना है कि—

मनुष्य स्वभावतः सत्य को चाहता है, उसी को साक्षात् करना चाहता है. सत्य को अनुभव करना चाहता है तथा संसार के गुप्त से गुप्त रहस्य को प्रगट करना चाहता है। इसलिये भगवान् वेद और उपनिषद् कहते हैं— केवल उस समय ही सब सन्देह मिट जाते हैं, सारा मोहान्धकार छिन्न भिन्न हो जाता है, सारी कुटिलता सीधी हो जाती है, जबकि मानवात्मा अपने हृदय मन्दिर में परमात्मा देव का दर्शन कर लेता है—

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्व संशयाः
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि दृष्ट एवात्मनीश्वरे।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आये धामानि
दिव्यानि तस्थुः।
वेदा हमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्
तमेवं विदित्वाति मत्युमेतिनान्यः पन्था विद्यतेयनाय।

हे अमृत की सन्तानों ! हे दिव्यधाम निवासियो ! सुनो ! हमने इस अज्ञानान्धकार से ज्ञान रूपी प्रकाश में पहुंचने का मार्ग पा लिया है, जो इस अन्धकार से परे है, जिसको जानने ही से उस ज्ञान से देदीप्यमान स्थान को पहुंचा जाता है। मुक्ति का इससे अतिरिक्त कोई दूसरा मार्ग ही नहीं है।

सध्या योग विद्या इसी सत्य को प्राप्त करने के लिये और इसमें सफलता प्राप्त करने के लिये या इस साधना को उपयोगी वैज्ञानिक प्रणाली को सर्व साधारण मनुष्यों में स्थापित करने का प्रस्ताव करती है। इसमें पहली बात तो यह है कि प्रत्येक विद्या की अनुसन्धान प्रणाली जुदा २ है। जैसे तुम यदि ज्योतिषी बनना चाहते हो और घर बैठे २ ज्योतिष की रट लगाना चाहो तो ज्योतिष का तुम्हें कुछ भी ज्ञान न हो सकेगा। रसायन शास्त्र के विषय में भी यही बात है। इसमें सफलता पाने के लिये एक निश्चित प्रणाली का अनुसरण करना होगा। यन्त्रालय में जा कर भिन्न २ द्रव्यों को लेना होगा, उनको इकट्ठा करके जुज के अनुसार मात्रा में उनको मिला कर, फिर निश्चित द्रव्य को लेकर परीक्षा करनी होगी। इस प्रकार करते २ विभिन्न द्रव्यों के गुण और धर्म का ज्ञान कर लेने पर फिर आप रसायनवेत्ता बन सकोगे। और अगर यदि तुम ज्योतिषी बनना चाहते हो तो तुम्हें मानमन्दिर में जा कर दूरवीक्षण यन्त्र की सहायता लेकर तारा ग्रहों की गतिविधि की आलोचना करनी होगी, तबही तुम ज्योतिषी बन सकोगे। इससे स्वयं सिद्ध है, कि प्रत्येक विद्या सीखने की एक निश्चित प्रणाली हुआ करती है। इसी प्रकार धर्म के मर्म को जानने की भी एक निश्चित प्रणाली होनी चाहिये।

किसी भी ज्ञान को प्राप्त करने के लिये हम उसकी सामग्री को एकत्रित करते हैं, फिर भिन्न २ घटनाओं की आलोचना करनी होती है। इसी प्रकार जब तक अपने मन के भीतर क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है इस बात को स्वयं प्रत्यक्ष न कर लें, तब तक हम अपने विषय में, मनुष्य की भीतरी प्रकृति के विषय में तथा अपने विचार धारा के विषय में कुछ भी नहीं जान सकते हैं। बाह्य जगत की बातें जान लेना आसान बात है, लेकिन अन्तर्जगत के व्यापार जानने का एक भी यन्त्र नहीं है। अनुसन्धान के बिना विज्ञान निरर्थक और निष्फल हो जाता है। इसलिये जिन सब मानसतत्व के अनुसन्धान करने का मार्ग "संध्याविज्ञान" ढूंढ़ निकालने वाले पुरुष रत्नोंने जो विधि निकाली है, उनके अतिरिक्त सबहो वाद विवाद करते हैं और असली तत्व की बात कुछ भी नहीं जानते। संध्या विज्ञान सबसे पहले अपनी अन्तरात्मा का विश्लेषण करना सिखलाती है और मनही मनस्तत्व के अनुसन्धान का एक मात्र यन्त्र है। (अंग स्पर्श देखो) मनुष्य को एकाग्र शक्ति जब यथार्थ में स्थिर रूप से अन्तर्जगत् में प्रवेश कर जाती है, तभी वह मनके सब अङ्ग प्रत्यङ्ग को और भी प्रत्यक्ष कर देती है। यथार्थ में बात यह है कि हम में से बहुतों ने इस भीतरी यन्त्र की पर्यवेक्षण शक्ति भी खो दी है। मनोवृत्तियों को एक मुख हो कर भीतर ही घुमाना और उसकी बाहरी गति को रोकना जिससे कि वह अपने स्वभाव को ही जान सके, इसके लिये उसकी समस्त शक्ति को एकत्रित कर, उसको मन के ऊपर ही प्रयोग करना बहुत कठिन काम है। परन्तु इस विषय में वैज्ञानिक बुद्धि से अग्रसर होने के लिये संध्या योग ही एक मात्र उपाय है।

अब यहां प्रश्न उठता है कि इस प्रकार के ज्ञान की मनुष्य जीवन में क्या आवश्यकता है ? इसका सबसे पहला उत्तर तो यह है कि—ज्ञान ही ज्ञान का सब से उत्तम पुरस्कार है। दूसरे में इसकी उपयोगिता भी है और वह यह है कि इसके द्वारा मनुष्य जीवन के समस्त दुःख द्वन्द्व दूर हो जाते हैं। जब मनुष्य अपने मन का पता पा लेता है, तब उसके सामने एक ऐसी वस्तु उपस्थित हो आती है, जिसका किसी समय भी नाश नहीं होता है, जो अपने स्वभाव से नित्य पूर्ण और शुद्ध है। ऊपर बताई हुई अवस्था होने पर मनुष्य को पूर्ण ज्ञान हो जाता है, फिर उसकी किसी समय भी मृत्यु नहीं है, वह जरा मरण रहित हो जाता है। अब उसकी असार वासनायें भी नहीं रहने पातीं, बल्कि वह अपने शरीर में ही परमानन्द को प्राप्त कर लेता है।

जिस एक उपाय से ज्ञान प्राप्त हो सकता है, उसका नाम एकाग्रता है। रसायनशास्त्र का अन्वेषक परीक्षणशाला में जाकर, वहां अपने मन की समग्र शक्ति लगा कर जिस वस्तु का विश्लेषण और प्रयोग करता है, उसका बाहरी वस्तु का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। ज्योतिर्विद् जिस समय अपने मनकी समस्त शक्ति को एकत्रित कर ताराग्रहों पर अपनी दृष्टि गाड़ता है, उस समय सौर जगत के ग्रह उपग्रह अपने २ गुप्त भेद को प्रगट कर देते हैं। इस प्रकार मैं यहां पर जिस विषय की बात कह रहा हूं उसमें आप मन को जितना एकाग्र कर सकेगें, उतना ही इस विषय का रहस्य हमारे पास प्रगट हो जायेगा। तुम मेरी बात सुन रहे हो, बस तुम भी इस बात की ओर जितना मन एकाग्र करोगे, उतनी ही मेरी बात आपकी समझ में अच्छी तरह आ सकेगी।

मन की एकाग्र शक्ति के बिना किस तरह यह सब ज्ञान प्राप्त हुआ है ? प्रकृति का दरवाजा खटखटाना, जान लेने पर प्रकृति अपना रहस्य खोल देती है। प्रकृति का दरवाजा खटखटाने को शक्ति भी इसी एकाग्रता से है। मनुष्य के मन की शक्ति की कोई हद नहीं है, यह जितनी एकाग्र होगी, उतनी ही यह शक्ति एक लक्ष्य पर आ जायेगी। यही एक रहस्य की बात है।

मन को स्वभाव से ही बाहरी ज्ञान हुआ करता है और सका बाहरी विषयों में स्थिर करना सहज है, किन्तु धर्म मनो-विज्ञान अथवा दर्शन शास्त्र के विषय में विषयी और विषय कही बात है। मनस्तत्व को ढूंढ़ निकालना ही यहां प्रयोजन है और मन ही मन का अनुसन्धानक है। मन की समस्त शक्ति को एकत्रित कर और मन के ऊपर ही प्रयोग करना होगा। तब ही र अपना रहस्य आप प्रगट कर देता है। जैसे सूर्य्य की तेज रण के सामने बहुत अन्धतमः स्थान भी अपनी गुप्त बात प्रगट कर देता है। उसी प्रकार यह एकाग्र मन भी अपने तरी सब रहस्यों को प्रगट कर देता है। अब हम जब विश्वास यथार्थ भूमिका में पहुंच जायेंगे, उसी समय ही यथार्थ धर्म भी प्राप्ति होगी। तब ही आत्मा है या नहीं, जीवन केवल ान्य जीवित काल है, अथवा अनन्त काल व्यापी है और र नाम की कोई सत्ता है या नहीं, इसको हम स्वयं देख गे। संध्या योग विद्या हमें इसी बात की शिक्षा देने के लिये इसमें जितने भी उपदेश हैं, उन सब में एकाग्रता प्राप्त के लिये कहा गया है। इसलिये संध्या विज्ञान सीखने के तुम्हारा धर्म चाहे जो हो, तुम आस्तिक हो चाहे नास्तिक,

बौद्ध हो चाहे कृष्टान, इसमें बनता बिगड़ता कुछ नहीं, इसके लिये इतना ही यथेष्ट है कि तुम मनुष्य हो और किसी किस्म की भाषा भाषी हो, सबही भाषा में अनुसन्धानक शक्ति मौजूद है और उसमें तुमको अधिकार है। लेकिन संध्या विज्ञान सीखने के लिये नियम वही हो सकते हैं, जो परम्परा से महान आत्माओं ने निर्धारित किये हैं।

संध्या विज्ञान सीखने में किसी प्रकार के अन्ध विश्वास की आवश्यकता नहीं है, जब तक स्वयं सिद्ध न करलो, विश्वास करने की आवश्यकता नहीं। संध्या विज्ञान सत्य को प्रगट करना चाहता है। हम क्रमशः आलोचना करते हुये समझ सकेंगे कि मन और शरीर का कितना घना सम्बन्ध है। तुम यह कहना चाहते हो कि जाग्रत अवस्था की सत्यता को प्रमाणित करने के लिये स्वप्न अवस्था अथवा कल्पना की सहायता लेनी होती है, तो ऐसा नहीं हो सकता? सिर्फ संध्या योग के अभ्यास करने के लिये दीर्घ काल व निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता होती है। यही कारण है कि इसका कुछ भाग तो शरीर के संयम को बतलाता है, जिसे अङ्ग स्पर्श कहते हैं। परन्तु इस पर भी इसका अधिकांश भाग मन के संयम करने की शिक्षा देता है। यदि हमारा विश्वास हो कि मन केवल शरीर का सूक्ष्म अवस्था मात्र है और मन शरीर पर कार्य कराता है, तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि शरीर मन के ऊपर अपना प्रभाव रखता है। क्योंकि शरीर के अस्वस्थ रहने पर मन भी अस्वस्थ हो जाता है। शरीर के स्वस्थ रहने पर मन भी स्वस्थ रहता है। अधिकांश मनुष्य पशुओं से बहुत ही थोड़े उन्नत होते हैं। इसलिये मन के ऊपर ईस शक्ति को प्राप्त करने के लिये वा शरीर व मन के ऊपर

प्रभाव विस्तार के लिये हमें कुछ बाहरी साधनों की आवश्यकता हुआ करती है। तब इन साधनों से शरीर बिल्कुल सुसंस्कृत हो जाता है, तबही मनको अपनी इच्छा के आधोन चलाने की चेष्टा की जा सकती है। इस प्रकार मन को अपनो इच्छा के आधीन चला सकने पर हम उसको अपने वश में करने को वाध्य हो सकेंगे।

संध्याविज्ञान के मत में यह सब बहिर्जगत्, सूक्ष्मजगत् का स्थूल विकास मात्र है। इसलिये संध्यायोग में सूक्ष्म को कारण और स्थूल को कार्य माना है। इसी हिसाब से स्थूल जगत् में दिखा देने वाली शक्तियों आभ्यन्तरिक सूक्ष्म शक्ति का एक भाग मात्र है। जो इस आभ्यन्तर शक्ति को चलाना सीख गये, वे समस्त प्रकृति को अपने वश में करना सीख गये। संध्या योग विद्या समस्त संसार को वश में करना और समस्त प्रकृति पर अपनी क्षमता विस्तार करने को ही अपना कर्तव्य समझती हैं। वह एक ऐसी अवस्था में पहुंचना चाहती हैं, जहां प्रकृति के सब के सब नियम उसके ऊपर अपना प्रभाव नहीं डाल सकते हैं। अथवा जिस अवस्था में पहुंने पर इन्हे लांघ कर पार चला जा सकता है। तब वह भीतरी व बाहरी प्रकृति पर अपना प्रभुत्व जमा लेता है। मनुष्य जाति की उन्नति व सभ्यता इस प्रकृति को वश में करने की शक्ति पर निर्भर है।

जिससे नाना सृष्टि उत्पन्न हुई, जो एक पदार्थ भिन्न २ रूपों में प्रगट हुआ, उस पदार्थ का निर्णय करना ही इस हमारे विज्ञान साधना का उद्देश्य है। संध्या वादियों का कहना है कि हम पहले अन्तर्जगत् का ज्ञान प्राप्त करेंगे, फिर उसके द्वारा

ही बाह्य जगत् का ज्ञान प्राप्त कर प्रकृति को वशीभूत करेंगे। प्राचीन काल के ऋषिवर इस बात की चेष्टा करते आये हैं। यह तो निर्विवाद सिद्ध है कि भारत ने इस बात की विशेष चर्चा की है, किन्तु और और देशों ने भी इस ओर कुछ २ चर्चा की है, आज भारत में प्राचीन गुरुओं की अपेक्षा बहुत ही निकृष्ट गुरुनाम धारी कुछ व्यक्ति दिखाई देते हैं। फिर भी भारत के गुणी गण इस विषय में कुछ न कुछ जानते ही हैं।

संध्या योग में गुप्त व गुह्य जो कुछ है, वह सब छोड़ देने चाहिये। केवल जो बल प्रदान करने वाली है, उसका ही अनुसरण करना होगा। जो धर्म तुम्हें निर्बल बनाता है, उस धर्म को छोड़ देना चाहिये। बहुत ही प्राचीन काल से इसका आविष्कार हुआ था, तब से अब तक इसका नियम पूर्वक प्रचार होता चला आ रहा है। जितने भी इस विषय में लेखक हुये हैं, सबने ही न्याय सङ्गत बात कही है। आधुनिक लेखकों में से बहुतों ने विविध प्रकार की रहस्यमयी अजनवी बातें लिख डाली हैं। इस तरह जिसके हाथ में यह विद्या पड़ी, उन्होंने इसकी सब क्षमता अपने हाथ में रखने के लिये बहुत गोपनीय वा अजनवी बना रक्खी है और मुक्तिरूप प्रकाश पुञ्ज को इसमें पड़ने ही नहीं दिया।

इसके भीतर गुप्त व प्रगट जो कुछ भी है, वह सब पर विदित करने के उद्देश्य से लिखा जा रहा है। इसको जहां तक हो सकेगा युक्ति द्वारा ही समझाया जा सकेगा। किन्तु जो कुछ नहीं समझाया जायगा उतना ही लेखक लेखन-शैली में या अव्यक्ततत्व अनुभव में असमर्थ और अविज्ञ समझा जायेगा।

अन्ध विश्वास करना एक तरह का अनर्थ है, किन्तु प्रत्येक विषय का तथ्य अनुसन्धान करना और विचार शक्ति को लगा देना ही मनुष्य-धर्म है। जड़ विज्ञान सीखने के लिये जैसे नियम बद्ध एकाग्र होकर सीखना पड़ता है, उसी प्रकार नियम पूर्वक मनोविज्ञान सीखा जा सकता है। इसमें जहां तक सत्य है, उसको सबके सामने खुले मैदान में स्पष्ट भाषा में प्रगटकर देना ही ठीक है।

सांख्य दर्शन का मनोविज्ञान।

—*:o:*—

सांख्य दर्शन के ऊपर ही संध्याविज्ञान की उत्पत्ति हुई है, इसलिये यहां पर सांख्य दर्शन के विषय में लिखेंगे। सांख्य दर्शन के मत में किसी भी विषय का ज्ञान, उस वस्तु के साथ चक्षु आदि इन्द्रियों के संयोग से होता है। चक्षु आदि यन्त्र उसको इन्द्रियों के पास भेज देते हैं, इन्द्रियां मन के पास और मन उसको निश्चयात्मक बुद्धि के पास, तब पुरुष व आत्मा उसको ग्रहण करता है, फिर वह (पुरुष) उसको फिर से उन्हीं के बीच में उन्हें लौट जाने की आज्ञा करता है। इस विषय परम्परा से हमें विषय का ज्ञान हुआ करता है।

आत्म देव के अतिरिक्त सबही पदार्थ जड़ हैं, परन्तु मन चक्षु आदि बाहरी इन्द्रियों की अपेक्षा बहुत सूक्ष्म भूतों से बना है। मन जिस सामग्री से बना है, उसको क्रमशः स्थूलतर होने चर्म चक्षु से दिखाई पड़ने वाले पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, भूतों से अन्तर केवल तन्मात्राओं के तारतम्य का है। सूक्ष्म शरीर १६ तत्वों से बना है। पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय,

पांच प्राण, अन्तः करण, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। जीव जब देह त्याग करता है, तब लोकान्तर गमन में इन उन्नीसों में से एक भी नहीं छोड़ता है। लेखक कहां तक इसमें लिखने का अधिकार रख सकता है, किन्तु यह लिखने के लिये विवश हूं कि जीव देहान्तर में भी उसी आकारवत् अतीन्द्रिय राज्य में विचरण करता है। इसमें आश्चर्य करने की बात नहीं है। किन्तु संध्या साधना द्वारा अनुभव करने की है। बस सांख्य के मनोविज्ञान का सार यही है। इसलिये बुद्धि व स्थूल भूतों में अन्तर केवल तन्मात्राओं के तारतम्य का है। इसमें एक मात्र पुरुष ही चैतन्य है। मन तो आत्मपुरुष के हाथ में यन्त्र के समान हुआ करता है। इसके द्वारा आत्मा बाहरी विषयों का ग्रहण करता है, मन तो शीघ्र परिवर्तन शील है, एक ओर से दूसरी ओर दौड़ने वाला है। कभी कभी इन्द्रियों के साथ संलग्न रहता है। इसके अतिरिक्त मन की अन्तर्दृष्टि की शक्ति भी है। इसलिये मन की समग्र शक्ति के सहारे ही मनुष्य अपने गम्भीर तम स्थान को भी देख लेता है। इस अन्तर्दृष्टि की शक्ति को प्राप्त करना ही संध्यासाधक का पहला कर्तव्य होता है। मन की समस्त शक्ति को एकत्रित करके इसके भीतर क्या हो रहा है, क्या नहीं हो रहा है, इसी पर लक्ष्य रहना होता है। तब इसमें अन्ध विश्वास की क्या आवश्यकता है? यह तो साधकों को परीक्षा कर देखने की बात है। वर्तमान शारीरिक तत्ववेत्ताओं का कहना है कि आंख में यथार्थ में देखने का कोई साधन नहीं, बल्कि इन्द्रियों की क्रिया कराने की शक्ति मस्तिष्क के भीतर स्नायु केन्द्रों में है। इसी प्रकार सब इन्द्रियों के विषय में जानना होता है। मस्तिष्क जिस पदार्थ से बना है अन्यान्य केन्द्र भी उसी पदार्थ

से बने होते हैं । सांख्य मतवाले भी यही कहते हैं । भेद केवल इतना है कि एक तो भौतिक विषय के अनुसन्धान में ही मस्त है; और दूसरा आध्यात्म पर, ऐसा होने पर भी एक ही बात है ।

अपने शरीर के भीतर क्या हो रहा है ? और क्या नहीं हो रहा है, संध्यासाधक इस बात की उपयोगिता अवस्था पाने की इच्छा करता है । ? यही समझना चाहिये कि विषय इन्द्रिय गोचर होते ही जिस ज्ञान की उत्पत्ति होती है, वह किस तरह स्नायु सूत्रों में घूमता है ? और मन किस तरह से उसको ग्रहण करता है और किस प्रकार निश्चयात्मक बुद्धि के पास पहुंचाता है ? प्रत्येक विज्ञान शिक्षा के कुछ निश्चित नियम होते हैं । किसी भी विज्ञान को क्यों न सीखो उसके लिये प्रस्तुत होना पड़ेगा, फिर निश्चित प्रणाली को अपनाना होगा । ऐसा न करके फिर सीखने का दूसरा उपाय क्या है ?

किस प्रकार संध्या विज्ञान सीखा जाय ।

—:०:—

संध्या विज्ञान सीखने के लिये सब से पहले भोजन के विषय में लिखना होगा और उसका नियम बांध देना आवश्यकीय होगा, जिससे मन बिल्कुल शान्त और आल्हादित रहे, ऐसा भोजन करना चाहिये । इस का अनुभव किसी पशुशाला में जा कर करना होगा कि आहार के साथ जीव का क्या सम्बन्ध है ? स्पष्ट ही समझ में आ जायगा ।

हाथी बहुत बड़ा शरीर धारी जीव होता है, परन्तु उसकी आकृति बिल्कुल शान्त होती है । हाथी से कई गुणा छोटा सिंह

होना है, उसके पिंजरे की तरफ़ जाइये, देखोगे कि वह छटपटा रहा है। इससे समझ में आजाता है कि भोजन के तारतम्य के अनुसार प्रकृति में कितना अन्तर है ? हमारे शरीर में जितनी शक्तियां काम करती हैं, सब भोजन ही से उत्पन्न होती हैं आप उपवास कीजिये, तुम्हारा शरीर दुर्बल हो जायगा, शारीरिक शक्तियां कमज़ोर हो जायेगीं, मानस शक्तियों का ह्रास हो जायेगा, स्मृति शक्ति कम हो जायगी, विचार शक्ति की न्यूनता होगी, इससे समझ में आ जायगा कि भोजन के तारतम्य से शरीर कैसा बनता है और कैसा बिगड़ता है। जब वृक्ष छोटा होता है, उसकी रक्षा निमित्त बाड़ बांध दी जाती है, ज्योंही वृक्ष सबल हो जाता है, बाड़की आवश्यकता नहीं रहती है। इसी प्रकार आहार के विषय में समझना चाहिये कि संध्या योग साधन निमित्त प्रथम भोजन ही से शरीर व मन ऐसा बनायो जाय जिससे शरीर व मन वाणी सत्व प्रेम हो सके और निरालस्य निरभिमान सदा बना रहे। (विशेष वाक् संयम में देखिये)

संध्या साधक को आराम तलबी व कठोरता इन दोनों को छोड़ देना चाहिये। उसको उपवास या और प्रकार का शारीरिक कष्ट न देना चाहिये, जोकि अपने को अनर्थक सिद्ध हो।

चरित्र गठन (यमनियम)

--:o:--

अब खान पान के पीछे संध्या साधना के लिये चरित्र गठन जिसे यम और नियम भी कहते हैं लिखना होगा। वर्तमान समय में चरित्र गठन (यम, नियम) को लोग उपहास की दृष्टि देखते हैं। अथवा चरित्र गठन को विरक्त हो

ही धर्म सम्प्रदायों की सम्मति में प्रत्येक व्यक्ति को सुचरित्र-वान् होना आवश्यक है। किन्तु भारतीय दार्शनिक सचरित्र-वान् होने की शिक्षा देते हैं। वह इस प्रकार से—

अहिन्सा वृत्तिसे रहना अर्थात् प्राणी मात्र को अपने ही जैसा समझना। मनुष्य पर ही अहिंसक व्यवहार करने से बस, अपनी जुम्मेवारी पूरी हो गई है, ऐसा समझ कर प्राणीमात्रपर दया दृष्टि रखनी चाहिये अहिन्सा कहलाती है।

सत्य परायण होना। मन वचन कर्म से सत्य ही का व्यवहार करना चाहिये। मोह या क्रोध वश; अथवा हंसी मजाक में भी असत्य भाषण न किया जाय। सत्य के द्वारा हम यथार्थ में कार्य करने की शक्ति प्राप्त कर सकते हैं सत्य में सब स्थित है, जैसा देखा या सुना हो, वैसा ही वर्णन का नाम सत्य है।

चोरी न करना अर्थात बिना किसी दूसरे की आज्ञा लिये बिना कोई भी वस्तु न लेने का नाम "अस्तेय" है।

शरीर में उत्पन्न हुये रक्त वीर्य्य की रक्षा करते हुये परोप-कारिणी विद्याओं का अध्ययन करना और 'मातृवत पर दारेषु की भावना सदैव हृदयङ्गम करना ही ब्रह्मचर्य कहलाता है। यह भावना छोड़ देनी चाहिये कि विरक्त हो योगी हो सकते हैं, क्योंकि भारतीय सदा से गृहस्थ में रहते हुये भी ईश्वर साक्षात् करते थे और करते हैं।

अधिक कष्ट के समय किसी दूसरे के पास से किसी प्रकार की अनुचित सहायता न लेने का नाम अपरिग्रह कहलाता

है। क्योंकि जब कोई व्यक्ति दूसरे के पास से कुछ उपहार ग्रहण करता है, शास्त्र में कहा है कि उस समय उसका हृदय अपवित्र हो जाता है, मन हीन दशा को प्राप्त होता है। वह अपनी स्वाधीनता भूल जाता है क्योंकि उसमें वह बद्ध व आसक्त हो जाता है।

६ पवित्रता बाहरी और आन्तरिक दोनों प्रकार की आवश्यकता है। किसी प्रकार की मलीनता आचार व्यवहार में न आने देना शौच कहलाता है। संध्या साधक को दोनों प्रकार के शौचाचारों की आवश्यकता होती है, अर्थात आन्तरिक और बाह्यक।

७ पुरुषार्थ करते ही रहना, पुरुषार्थ से जो प्राप्त हो उससे ही सन्तुष्ट रहना, अन्य के धनादि को देख कर मन में किसी प्रकार का लोभ व क्षोभ न आने देना ही सन्तोष कहलाता है, और इससे अपार शांति भी मिलती है।

८ संध्या साधना के लिये शीतोष्ण सुख दुःख को समभाव समझ कर नियमित समय पर एकनिष्ट हो कर और कर्तव्य में लीन होना और प्रत्येक कार्य को निश्चित समय पर ही करने को तप कहते हैं। समय को अमूल्य समझ कर ही समय का उपयोग करना तपस्या करने से मतलब है

९ महान पुरुषों के लिखित पुस्तकों का, अथवा अध्यात्म सम्बन्धी पोथियों का अवलोकन और उनका निगूढ़ तात्पर्य अपनी डॉर्नान्दिनी में लिखना, अगर पुस्तकें न मिल सकें तो एकान्त में बैठ कर श्वास प्रश्वास में ओ३म को लक्ष्य करना ही स्वाध्याय कहलाता है।

१० ईश्वर का प्रेम हृदय में रखते हुये बार २ अघमर्षण मन्त्रों पर गहरी दृष्टि रखते हुये अपने समस्त कर्मों को ईश्वरार्पण करना ईश्वर-प्रणिधान कहलाता है।

इन नियमों का उद्देश्य सच्चरित्रवान् बनने का है। इसका निश्चित् ज्ञान न रखते हुये किसी तरह से संध्या साधना सिद्ध न होगी। इन नियमों पर चलते हुये साधक को साधना का फल अनुभव होने लगता है, और प्रत्येक गृहस्थ निर्विघ्नता पूर्वक इन नियमों से सच्चरित्रवान् बन कर ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। इन नियमों के अभाव में ईश्वर का नाम लेना ईश्वर की मखौल उड़ाना है। चरित्र हीन मनुष्य ससार में किसी भी कार्य का सम्पादन नहीं कर सकता है।

आसन विज्ञान।

—:o:—

सच्चरित्रवान् होने के पश्चात् संध्या साधना के लिये आसन की बात आती है। यहां प्रश्न उठता है कि आसन अभ्यास करने का उद्देश्य क्या है? इसका उत्तर यह है कि जब तक खूब उच्चावस्था प्राप्त न की जावे, तब तक नियम पूर्वक साधना करना होता है। इस साधना में शारीरिक और मानसिक दोनों प्रकार की प्रक्रिया की आवश्यकता होती है। जिस को जिस आसन से बैठने का सुभीता हो, उसको उस आसन से बैठना चाहिये। हम क्रमशः आगे लिख पावेंगे कि संध्या साधना के समय शरीर के भीतर विविध प्रकार की हल चलें पैदा होती हैं, स्नायुओं के भीतर जिन २ शक्तियों का प्रभाव निरन्तर दिन रात

चलता रहता है, उसकी गति को उस मार्ग से फिराकर, उसको नये रास्ते से चलाना होगा। जिस समय यह काम किया जाता है, शरीर के भीतर एक प्रकार की नई हल चल। (कम्पन्) आरम्भ हो जाती है। सारा शरीर मानो दूसरी बार बन रहा हो। यह क्रिया अधिकांश में मेरू दण्ड (रीड की हड्डी) के भीतर में होती है। इसलिये आसन के विषय में इतना समझ लेना आवश्यक होता है; वक्षदेश, हृदय, गर्दन को एक सीध में रखना होता है, जिससे सारा बोझ पजर पर पड़े। यदि छाती नीचे झुकी रहेगी, तो इससे किसी प्रकार का उच्च भाव नहीं विचारा जा सकता है। यह तुम सहज ही में देख पाओगे कि संध्यायोग का यह भाग हठयोग के साथ अधिक मिलता है। हठयोग केवल स्थूल देह का विचार करने में ही व्यस्त रहता है। क्योंकि इसका उद्देशय केवल स्थूल देह को बलवान् बनाना है। हठयोग के विषय में यहां पर कुछ कहने की बात नहीं है। क्योंकि इसकी क्रियायें अति कठिन हैं; और एक दिन में सीख भी नहीं सकते। इससे अध्यात्म उन्नति भी नहीं हो पाती। इसकी अधिकांश क्रियायें हठ योग आदि पुस्तकों में मिलेगी. उसमें भी शरीर को भिन्न २ भाव से रखने की व्यवस्था की गई है। परन्तु उनका उद्देशय एक मात्र शरीर रक्षण का होता है, अध्यात्म उन्नति का नहीं। शरीर की कोई पेशी ऐसी नही है. कि जिसको हठयोगी अपने वश में न कर सके। हृदी यन्त्र उसकी अपनी इच्छा के अनुसार बन्द भी हो जाती है और चल भी सकती है। शरीर का समस्त भाग अपनी इच्छा पर चला सकने की सामर्थ्य रखते हैं।

आसन सिद्ध होने पर भूक कम लगती है, प्राण और अपान पर वैज्ञानिक दृष्टि डालने से सहज ही में समझ सकोगे

कि प्राण, जो श्वास अन्दर आता है और अपान, जो श्वास बाहर छोड़ा जाता है, वह जैसे ४'८ फी सदी होता है। यह दिन की अपेक्षा रात्रि में अधिक व्यय होता है इसलिये कार्बोनिक एसिड गैस् के अधिक और न्यून होने पर भूख की कमीबेशी होती है। व्यायाम आदि करने पर कार्बोनिक अधिक व्यय होता है, इसलिये भूख भी अधिक लगती है। अतः योग का तीसरा अङ्ग आसन है, जोकि निश्चित बैठा रहने पर क्षुधा का अभाव सा हो जाता है। कम बोलने अर्थात् मौनावलम्बन रहने से भूख प्यास की निवृत्ति रहती है। क्योंकि इसमें कार्बोनिक कम खर्च होता है। यह अनुभव सिद्ध करने योग्य है कि भरपेट दशा में जोर से गाने पर शीघ्राति शीघ्र भूख लग जाती है। इसलिये दीर्घ अभ्यास साध्य के लिये प्रथम आसन ही का अभ्यास उपयोगी होता है। जहां तक सन्ध्या साधने का सम्बन्ध है अनेक २ साधनों के साधने की आवश्यकता नहीं, किन्तु सिद्धासन या पद्मासन किसी आसन से तीन या चार घन्टे पर्यन्त बिना दुःख और किसी अङ्ग के हिलाये बैठे रहने से यह आसन का पूर्वाङ्ग सिद्ध है।

आसन सिद्धि के लिये क्रम क्रम से अभ्यास बढ़ाता हुआ इतनी उन्नति तक पहुंचना होता है कि बिना हिले जुले भरपूर नींद तक सो सकें, यह आसन का अन्तिम सिद्धि है।

प्राण विज्ञान

—*:o:*—

आसन सिद्ध होने पर प्राणायाम की बात आती है। हमें अब प्राणायाम पर विचार करना है। देखना चाहिये कि चित्त वृत्ति के साथ प्राणायाम का क्या सम्बन्ध है? श्वास प्रश्वास शरीर रूपी यन्त्र की गति को नियमित करने वाला मूल यन्त्र है। एक बड़े इञ्जिन की ओर देखोगे तो पता लगेगा कि उसमें एक बड़ा चक्र घूम रहा है, और उस चक्र की चाल से क्रमशः छोटे से छोटा यन्त्र संचालित हो रहा है। इसी क्रम से मनुष्य शरीर में श्वास प्रश्वास यन्त्र इसी प्रकार का गति देने वाला चक्र है। यह भी शरीर में जहां भी जिस शक्ति की आवश्यकता होती है, उसको वहां पहुंचाता है।

हम अपने शरीर के विषय में बिल्कुल अनजान हैं, और जान सकना भी असम्भव है। हां, मृतक शरीर को छेदन कर उसके भीतर क्या है, क्या नहीं है, इसको देख सकते हैं। हम अपने जीवित शरीर को भी ऐसा कर सकते हैं। परन्तु उसके साथ हमारे प्राण का कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका कारण क्या है? इसका कारण यह है कि हम अपने मन को इतना एकाग्र नहीं कर सकते कि जिससे हम अपने शरीर की सूक्ष्म गतियों का ज्ञान सकें। जब मन बाहरी बातों को छोड़ कर शरीर के भीतर के भाग में प्रवेश करता है, तब ही हम सूक्ष्म गतियों को जान सकते हैं। इस प्रकार का गहरा ज्ञान प्राप्त करने के लिये स्थूल वस्तु से साधना आरम्भ करना होता है कि इस सारे शरीर को कौन चला रहा है? वह प्राण शक्ति का प्रत्यक्ष

परिदृश्यमान् रूप है। अब साधक को श्वास प्रश्वास क्रिया के साथ भीतर प्रवेश करना होता है। इस प्रकार शरीर के भीतर होने वाली क्रिया के साथ देख सकते हैं; और इसी के द्वारा विजय प्राप्त करते हुये मन भी हमारे वश में हो जायगा। इस प्राणायाम तत्व की आलोचना अधिक समय में हो सकती है; और इसको ठीक २ समझने के लिये बहुत दिन आलोचना करने की आवश्यकता होती है। इसलिये हम यहां कुछ २ भाग की क्रमशः आलोचना करेंगे।

अब हम क्रमशः मालूम कर सकेंगे कि प्राणायाम साधन करने में जो क्रियायें की जाती हैं, उसके करने का कारण क्या है? और उन प्रत्येक क्रिया से शरीर के भीतर किस प्रकार का प्रभाव होता है, यह सब साधना द्वारा मालूम कर सकेंगे; परन्तु इसके लिये निरन्तर एकाग्रता से साधना करने की आवश्यकता होती है। इसमें चाहे कोई कितनी ही युक्तियां क्यों न दे, परन्तु साधक स्वयं प्रत्यक्ष न कर सके, तब तक सब निरर्थक है। जब शरीर के भीतर होने वाली इस जीवन स्रोत की गति को स्पष्ट करलेंगे, उसी समय साधना के विषय में होने वाला सब सन्देह चला जायगा; और परम आनन्द और उत्साह अनुभव होने लगेगा।

अधिकांश मनुष्य यह विचार करते हैं कि प्राणायाम श्वास प्रश्वास लेने को एक क्रिया मात्र है, बात यह नहीं है। असल में प्राणायाम का श्वास प्रश्वास की क्रिया से बहुत ही कम सम्बन्ध है। ठीक तरह से प्राणायाम साधने का अधिकारी होने के लिये जुदे २ उपाय हैं। उनमें श्वास प्रश्वास क्रिया भी एक

उपाय है। प्राणायाम का अर्थ है प्राण (जीवनी शक्ति) का संयम करना। भारतीय दार्शनिकों के मत में यह सृष्टि दो पदार्थों से बनी है। उनमें एक नाम आकाश है। यह आकाश सर्व व्यापि, सब में समाई हुई सत्ता है। जिस किसी वस्तु का आकार है और जो कोई वस्तु न्यूनाधिक वस्तुओं के संयोग से बनी है, वे सब आकाश तत्व से उत्पन्न हुई हैं। यही आकाश तत्व विकारी होने से वायु के रूप में परिणित होता है और यही तरल पदार्थ के रूप में बनता है, और यही कठिन पदार्थ के रूप में हो जाता है। यहां तक कि यह आकाश ही सूर्य, पृथ्वी, तारा, धूमकेतु के रूप में हो जाता है। प्राणीमात्र का शरीर वनस्पति आदि जो आकारवत देखते हैं और जिन वस्तुओं को हम इन्द्रिय द्वारा देख सकते हैं, वह सबके सब पदार्थ आकाश तत्व से उत्पन्न हुये हैं। इस तत्व को इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष नहीं कर सकते, वह इतनी सूक्ष्म है कि यह साधारण अनुभूति के भी अतीत अगोचर है। जब यह स्थूल रूप में परिणित होकर किसी आकार को धारण करता है, तबही हम उसको अनुभव कर सकते हैं। सृष्टि के आदि में पहले एक मात्र आकाशतत्व ही वर्तमान रहता है। इसी तरह कल्प के अन्त में सब के सब कठिन व तरल व भाष्पीय पदार्थ ये सब आकाश तत्व मे लीन हो जाते है। फिर इसके बाद सृष्टि इसी आकाश तत्व से उत्पन्न होती है।

अब यहा प्रश्न उठता है कि किस शक्ति के प्रभाव से यह आकाश इस तरह से सृष्टि के रूप में परिणित होता है? इसका उत्तर यह है कि ऊपर बताये हुये "प्राण" शक्ति से ही यह

आकाश तत्व सृष्टि का उत्पादक कारण बनता है*। जैसे सब सृष्टि का कारण अनन्त सर्व व्यापि सत्ता मूल पदार्थ है, इसी तरह प्राण भी जगत् की उत्पत्ति का कारण भूत अनन्त सर्व व्यापनी शक्ति है। कल्प के आदि में और अन्त में सब पदाथ ही आकाश के रूप में परिणित होता है। दूसरे कल्प के आरम्भ में इसी प्राण शक्ति से सृष्टि का विस्तार होता है और यह प्राण हो आकर्षण शक्ति के रूप में उपस्थित होता है, यह प्राण ही स्नावनीय शक्ति प्रभाव अथवा विचार शक्ति के रूप को धारण कर समस्त क्रियाओं के रूप में प्रकाशित होता है। बाह्य व अन्तर्जगत् भी सब शक्तियां जब अपना मूल सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त हो जाती है तब उसको ही प्राण कहते हैं। (अघमर्षण मन्त्र देखो और विकास का मेल करके देखो)

विकासवादी इस प्रकार से सृष्टि उत्पत्ति होना बतलाते हैं कि—विकास प्रसारिणी शक्ति (प्राकृतिक पदार्थों) का आदि-मूल ईथर है। उसी के कम्पन से और तरङ्गावली से विद्युत प्रकाश शब्द और गर्मी पैदा होती है। उसी के सूक्ष्मातिसूक्ष्म कणों को एटम कहते हैं। इन एटम के संघर्ष से ही विद्युत उत्पन्न होती है और यही शक्ति Energy के रूप से स्थूल आकर में मेटर कहलाती है। मेटर की विरल दशा को गैस, तरल दशा को लिक्विड और ठोस दशा को सोलिड कहते हैं। ईथर से ही ये पदार्थ घनी भूत होकर आकर्षणानुकर्षण के नियम से चक्राकार गति में हो जाते हैं। कुछ दिनों में वही चक्र सूर्य हो जाता है। सूर्य में गर्मी और गति के कारण चक्कर पड़जाते हैं और जुदा हो कर अङ्गारों के रूप में दूसरे

* तै० उ० ब्रह्मानन्द वल्ली अ० १।

ग्रह उपग्रह बन जाते हैं। सूर्य अग्निमय तप्त गैस के आवरण से ढका हुआ है। इस तप्त मय पिण्ड के छोटे २ अङ्गारों के खण्डों से ही हमारी पृथ्वी आदि ग्रहों का जन्म हुआ है, जोकि अब शीतलता को प्राप्त होकर वनस्पति आदि भूत जगत की उत्पत्ति का कारण है। (समय आवेगा सन्ध्या सचाई पर होगी)

अब प्रश्न उठता है कि जब अपरोक्ष परोक्ष कुछ भी नहीं था, जब तमोद्वारा अन्धकार वृत्त था, उस समय क्या था * ? उत्तर इस प्रकार है कि आकाश ही गति शून्य हो कर उस समय वर्तमान था। यद्यपि प्राण उस समय अनुभव न होता था, फिर भी प्राण शक्ति का अस्तित्व किसी दूसरे रूप में विद्यमान था।

आज कल के विज्ञानवादियों का कहना है कि संसार मे जितनी भी शक्ति का विकास हुआ है, उसकी समष्टि चिरकाल तक बनी रहेगी, सिर्फ कल्प के अन्त में शान्त भाव को धारण कर बैठती है। फिर दूसरे कल्प के आदि में वही व्यक्त होकर परिवर्तित हो जाती है। तब इस प्राण का यथार्थ तत्व जानना और उसको संयम करना प्राणायाम का मुख्य उद्देश हो जाता है।

इस प्राणायाम के सिद्ध कर लेने पर साधक के अन्तर्हृदय में अनन्त शक्तियों का दरवाजा खुल जाता है। उदाहरण के लिये मानलो कि किसी साधक ने इस प्राण का विषय सब ठीक ठीक जान लिया और उसका जय भी कर लिया, तब बताओ इस संसार में अब कौन वस्तु ऐसी रह गई है, जो उसके आधीन

* तम आसीत तमसा गूढ मग्ने प्रकेत्तत्। इत्यादि ऋ० १०। नासदा सीन्नों सदा सीत दानीम।

न हो कर काम करे ? बल्कि सब कुछ उसकी आज्ञा से चन्द्र सूर्य अपने स्थान भ्रष्ट हो सकते हैं और छोटे २ परमाणुओं से लेकर बृहत्तम सूर्य तक उसके आधीन हो सकते हैं। क्योंकि उसने मूल संचारिणी शक्ति को वश कर लिया है, यही प्रकृति को वशीभूत करना ही प्राणायाम का मुख्य उद्देश है

भारतीय विज्ञान वादियों की विचार धारा में यही तो विशेषता थी. कि चाहे वह किसी भी तत्व की आलोचना करेंगे, पहले वह इस बात का अनुसन्धान करते थे कि—'ऐसी कौनसी वस्तु है, जिस एक के जान लेने से यह सब कुछ जाना जा सके * ? अर्थात जिस एक वस्तु के जानने से सब कुछ जाना जा सके, इस एक वस्तु की खोज में ही व्यस्त रहे।

यदि कोई थोड़ा २ करके संसार के एक २ तत्व को जानना चाहे, तो उसके लिये उसका अनन्त समय लगेगा, क्योंकि उसको तो एक बालू (रेत) तक का ज्ञान प्राप्त करना होगा। तब इस प्रकार से ज्ञान प्राप्ति की सम्भावना कैसे की जा सकती है ? इसलिये संध्या विज्ञान वादियों का कहना है कि इन सब विशेष व्यक्त पदार्थों के भीतर एक साधारण सत्ता विराजमान है, उसका जान लेने ही से इन सब का ज्ञान हो जाता है। इस प्रकार वेद में इस परिदृश्यमान सब सत्ता को ही एक सामान्य सत्ता में अन्तर्भाव किया है।

किस युक्ति से इस प्राण पर विजय किया जा सकता है ? यही प्राणायाम का मुख्य उद्देश है। प्रत्येक साधक को जो कुछ

* कस्मिन् भगवो विज्ञाते सर्वमिदं विज्ञातं भवति।

भी सबसे नजदीक हो, उससे ही साधना आरम्भ करना उचित है। इसलिये संसार की समस्त वस्तुओं की अपेक्षा हमारा शरीर ही सबसे अधिक निकटवर्ती है और उससे भी अधिक निकट है, प्राण ! जो प्राण सब में क्रीड़ा कर रहा है, उसका जो अंश हमारे शरीर व मन को चैतन्य शक्ति प्रदान कर रहा है, वह प्राण ही हमारे सबसे निकटवर्ती है, उस प्राण की साधना ही सबसे श्रेष्ठ साधना है। जो मनुष्य साधक इसमें कृत कार्य हो जाता है, वह सिद्धि प्राप्त करलेता है। तब कोई शक्ति उसके ऊपर प्रभुत्व नहीं कर सकती है, वह एक तरह से स्वयं शक्तिमान हो जाता है।

युक्ति व तर्क बहुत छोटी सीमा तक चल सकती है, वह हमें कुछ दूर तक ले जा सकती है, इससे आगे फिर उसका अधिकार नहीं रहता है। परन्तु यह देखा गया है कि विविध प्रकार के विषय जो युक्ति सीमा के बाहर होते हैं, कभी २ वे इसके भीतर भी आ पड़ते हैं। जैसे धूमकेतु कभी२ सौरजगत में आकर हमें दिखाई पड़ते हैं। इसी तरह बहुत से तत्व जो हमारी युक्ति सीमा के बाहर होते हैं, वे भी इसकी सीमा के भीतर आ पड़ते हैं। परन्तु विचार शक्ति अपनी इस सीमा को छोड़ कर बाहर नहीं जा सकती है। इनका यथार्थ सिद्धान्त अवश्य ही युक्ति सीमा के बाहर के भाग में जाकर अनुसन्धान करना होगा, जहां विचार तर्क की सीमा नहीं है। किन्तु संध्या विज्ञान का कहना है कि हमारे विज्ञान की चरम सीमा यही नहीं है। मन तो ऊपर बताई हुई दो भूमियों से भी ऊंचाई में गमन कर सकता है। उस भूमि को हम 'ज्ञानातीत' भूमि 'चैतन्यमय' कह सकते हैं। तब मन समाधि नामक पूर्ण चैतन्य अर्थात पूर्ण एकाग्र या ज्ञाना-

तीत अवस्था में आरूढ़ हो जाता है और सह् जात ज्ञान व युक्ति के अतीत विषयों को प्रत्यक्ष करता है।

चाहे बहिर्जगत हो या अन्तर्जगत जिस ओर भी देखा जाय उसी ओर ही एक अखण्ड पदार्थ समूह दिखाई पड़ते हैं। भौतिक जगत की ओर दृष्टि पातकरने से एक अखण्ड सत्ताविविध प्रकार के आकारों में विराजमान हो रही है। जैसे आप के शरीर के साथ सूर्य का कुछ भी विभेद नहीं है। इसका प्रमाण वैज्ञानिकों के पास जाओ वह तुम्हें समझा देंगे कि एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु का नाम मात्र के लिये ही भेद है। अनन्त जड़ वस्तु में यह टेबुल एक बूंद के समान है और हम उसके एक बूंद हैं। प्रत्येक साकार वस्तु ही इस अनन्त जड़ समुद्र की भंवरस्वरूप है।

भंवर एकसा नहीं रहता। मानलो किसी नदी में लाखों आवर्त उपस्थित होती रहती हैं, प्रति भंवर में प्रति क्षण नया जल आता है और घूमता है, उसके बाद दूसरी तरफ चला जाता है, तथा नूतन जल कणों का समूह उस स्थान पर अधिकार कर लेता है। इसी प्रकार यह संसार भी नियमित परिवर्तन स्वरूप जड़ राशी मात्र है। जैसे मानलो कि कुछ भूत समष्टि ने इससंसाररूपी महान समुद्र में कुछ दिन तक प्रवेश किया, इसके बाद किसी अज्ञ प्राणी के रूप में प्रवेश हुआ, इसके बाद कुछ ऐसे पदार्थों में प्रवेश हुआ। क्या इस नित्य प्रति प्रत्यक्ष होने वाली घटना क्रमांगन परिवर्तन शील नहीं है? उत्तर यह है कि सबही वस्तु परिवर्तन शील है। अब आप समझ गये होंगे कि यह केवल अखण्ड जड़ राशी विराजमान है। उसी के किसी अंश का नाम सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी, बनस्पति रूप धारण किये हैं। इनमें ही कभी स्थूल कभी सूक्ष्म अवस्था को प्राप्त होते हैं।

अब हमने अन्तर्जगत में भी एक अखण्ड भाव राशी का अनुसन्धान कर लिया है। जब हम इन सब बाह्य व अन्तर्जगत् को पीछे छोड़कर उस आत्मा के पास पहुंच जाते हैं. तब वहां पर एक अखण्ड सत्ता के अतिरिक्त कुछ नहीं दिखाई पड़ता है सब प्रकार की गतियों के भीतर एक अखण्ड सत्ता अपनी महिमा से आप विराजमान है। इसको अस्वीकार करने का तुम्हारे पास क्या उत्तर है ? आधुनिक विज्ञानाचार्यों ने इसे स्वीकार कर लिया है कि शक्ति समूह सर्वत्र ही समान भाव से विराजमान है। कभी अव्यक्त अवस्था में और कभी व्यक्त अवस्था में विविध प्रकार की शक्तियों को धारण करता है। तब इस शक्ति को संयम करना ही प्राणायाम का मुख्य उद्देश है।

प्राणायाम के साथ श्वास प्रश्वास की क्रिया का बहुत थोड़ा सम्बन्ध है, यह हम पहिले बता आये हैं। यह तो प्राणायाम साधन का अधिकारी होने के लिये एक साधारणसा उपाय मात्र है। प्रणायाम का यथार्थ उद्देश फुप्फुस की गति को अपने आधीन करना है। इस गति के साथ श्वास की क्रिया का घनिष्ट सम्बन्ध है, यह बात नहीं है, बल्कि स्वयं श्वास प्रश्वास की गति को उत्पन्न करता है। प्राण इस फुप्फुस को चलाता है, फिर वह फुप्फुस को गति वायु का अपने में आकर्षित करती है। इस से साफ जाहिर है कि प्राणायाम श्वास प्रश्वास की क्रिया नहीं है। यह भी हमारे अविदित नहीं है कि जो शक्ति इस समय अव्यक्त भाव धारण किये है, उसको व्यक्त अवस्था में लाया जा सकता है। दृढ़ प्राणायाम के अभ्यास द्वारा हम अपने शरीर के भीतर क्या हो रहा है क्या नहीं हो रहा है, इसको जान सकते हैं।

महान् समुद्र की ओर दृष्टि पात करने पर देख पाओगे कि उसके गर्भ में पर्वत के समान् बड़े २ तरंगों का समूह विराजमान है और उसकी अपेक्षा छोटे २ तरंग भी हैं और अब छोटे २ बुद्बुदे भी हैं; परन्तु इन सब के पीछे एक अनन्त महा समुद्र वर्तमान है, इसी प्रकार संसार में वर्तमान कोई इस पर्वताकार तरंग के समान महापुरुष है, और कोई उससे छोटे बुद्बुदे के समान् साधारण व्यक्ति हो सकते हैं। परन्तु सबके सब ही उस महा शक्ति समूह के साथ समानरूप से संयुक्त हैं। इस शक्ति के साथ जीव मात्र का सम्बन्ध है। जहां पर जीवनी शक्ति का प्रकाश देखोगे जानना चाहिये कि उसके पीछे अनन्त शक्ति का भंडार विराजमान है। इसको इस दृष्टान्त से समझिये :—" एक टोकरी (वर्षात में एक छोटा पौदा जो छतरी के आकार का पैदा होता है) की ओर देखिये, वह इतना छोटा होता है कि दूरबीक्षण यन्त्र द्वारा देखा जा सकता है, कुछ काल के पश्चात् शक्ति भंडार से क्रमशः अपने में शक्ति संग्रह करके एक और तरह का आकार धारण कर कुछ काल के अनन्तर एक पौदे के रूप में परिणित हो जाता है। फिर वही इस दशा से परिवर्तन होकर किसी पशु के रूप में देह धारण करता है, फिर पशुरूप से परिवर्तन होते २ एक दिन वह महान् आत्मा और सर्व श्रेष्ठ योगी हो जाता है। इसमें इतनी बात जरूर है कि इतने परिवर्तन होने के लिये लाखों करोड़ों वर्ष लग सकते हैं। प्रत्यक्षदर्शी योगियों का कहना है कि अध्यवसाय साधना का वेग बढ़ाकर वह अति सूक्ष्म काल में सिद्धि प्राप्त हो कर मोक्ष प्राप्त कर सकता

है। परन्तु इस प्रकार के अभ्यास बढ़ाते रहने को लक्ष वर्ष भी लग सकते हैं। इससे भी अधिक उच्चावस्था होने पर हजार वर्ष लग सकते हैं, किन्तु विधिवत् चेष्टा करने पर इसी जीवन में भी मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।

आत्मा की उन्नति का वेग बढ़ा कर किस प्रकार थोड़े समय में मुक्ति प्राप्त की जा सकती है, यही प्राणयाम साधन का एक मात्र उद्देश है।

सारे जगत् को इथर (Eather) के रूप में विचार करो, प्राण शक्ति से वह मानो स्पन्दित है और स्पन्दित होकर मानो अणु २ में विद्यमान हा रहा है, इस प्रकार हो जाने पर देख पाओगे कि जिस ओर से आरम्भ हुआ है, उससे जितना ही दूर पहुंचा जायेगा, वह स्पन्दन उतनाही मृद अनुभव होगा। दूसरी तरह समझ लो कि यह स्पन्दन शक्ति व्यापक है। इस समस्त क्षेत्र को एक वृत्त गोलाकार स्थान के रूप में कलपना करके देख पाओगे कि सिद्धि उसकी केन्द्र के समान है। इस केन्द्र से जितनो दूर जाओगे, स्पन्दन उनाही हल्का हो जायेगा। पृथिवी आदि सबकी अपेक्षा बाहरी स्थर है, मन उसकी अपेक्षा निकट वर्ति स्थर है और आत्मा मानों केन्द्र स्वरूप है। इस प्रकार विचार करने पर देख पाओगे कि जो एक स्तर में निवास करते हैं, वे आपस में एक दूसरे को देख और पहचान सकते हैं। परन्तु उसकी अपेक्षा निम्न व उच्चतर जीवों को देख नहीं सकेंगे। हम भी प्राण रूप मूल वस्तु से निर्मित हैं, तब तो हम सब ही एक प्राण समुद्र के भिन्न २ अंश मात्र हैं। परन्तु भिन्नता केवल स्पन्दन की है। यदि मन को अधिक स्पन्दन विशिष्ठ कर सकूं तो मैं फिर इस स्थर में सीमित नहीं रह सकता और मैं

तुमको देख नहीं सकूंगा, तुम मेरे सामने से अन्तर्धान हो जाओगे। आप में से यह बात अधिक लोग जानते होंगे कि यह बात बिलकुल सच है। मन को इस प्रकार अधिक उच्च से उच्च तर स्पन्दन विशिष्ट करने को ही संध्या योग में "समाधि" यह एक शब्द से सम्बोधित किया गया है। इस समाधि को निरन्तर अवस्थाओं में इन अतीन्द्रिय प्राणियों को प्रत्यक्ष कर सकते हैं। इस समाधि को सब से उच्च अवस्था में सत्य स्वरूप ब्रह्म के दर्शन हो जाते हैं। जिस उपादान से इस समस्त नाना प्रकार के जीवों की उत्पत्ति हुई है, तब हम यह सब जान सकते हैं। जैसे एक मृत पिण्ड (मट्टी के गोले) को जान लेने से समस्त मृत पिण्डों का ज्ञान होता है, इसी प्रकार से ब्रह्म के दर्शन से ही इस सारे ब्रह्माण्डों के अन्तर्जगत व बाह्य जगत रहस्य का पता लग जाता है।

जहां पर किसी असाधारण शक्ति का विकास हुआ है, वहां पर प्राण शक्ति ही समझनी चाहिये, यहां तक कि वह विज्ञान के साधनों तक को प्राण शक्ति के भीतर ही समझनी चाहिये। भाष्पीय यन्त्र को कौन चला रहा है ? यह प्राण ही भाप के रूप में होकर उसको चलाता है। यह जो बिजुली की चमक दमक अद्भुत क्रिया दिखलाई देती है, यह भी प्राणशक्ति के अतिरिक्त किस शक्ति का चमत्कार हो सकता है ? * पदार्थ

* आश्चर्य करने की बात नहीं है, आप इस विधिसे सन्ध्या साधना आरम्भ कीजिये, अगर आप साथ ही ब्रह्मचर्य भी पालन करते हैं, तो निस्सन्देह आप विद्युत धार केन्द्र बन सकते हैं। लेखक का और अपने सहधर्मियों का साक्षात अनुभव है कि बदली के दिनों में धोता के किनारे नाखून से ठीक करने से अग्नि के ऐसे अंगारे नाखूनों से निकलते हैं।

विज्ञान से क्या जाना जाता है ? वह भी बाहरी शक्ति के रूप में प्रकाशित हाता है। और जिस साधन द्वारा प्राण के स्थूल रूपों को जय करने की चेष्टा का जाती है, उसको "पदार्थ विज्ञान" कहते हैं। और जिस प्रकार के उपायों द्वारा अध्यात्म पर मफलता की जाती है, उम को ही प्राणायाम अर्थात प्राण संयम कहते हैं।

संमार में असुर प्रकृति के मनुष्य अधिक हैं। यदि कोई कहे कि आओ तुम्हें ऐसी विद्या सिखलावें जिससे तुम्हारा इन्द्रिय सुख अनन्त गुना बढ़ जावेगा, तो इसके लिये अनगिनत लोग दौड़ पड़ेगे। परन्तु यदि कोइ कहे कि आओ तुम्हें जीवन का परमलक्ष्य परमात्मा का साक्षात स्वरूप का दर्शन कराऊँ, तो कोई उमकी बात नहीं सुनेगा।

उच्चतत्व के अभिलाषी बहुत ही कम लोग पाये जाते हैं। लेकिन संमार में कुछ ऐसे महानुभाव भी हैं, जिनकी दृढ़ धारणा है कि शरीर चाहे हजार वर्ष तक जीता रहे, या आज ही और अबही नाश को प्राप्त हो जाये, लेकिन अन्त में इसकी वही गति है, जिन शक्तियोंके सहारे यह मानुषीशरीर टिका हुआ है, उनके क्षीण हो जाने पर यह शरीर भी न रहेगा। शरीर क्या है ? परिवर्तन होने वाले परमाणुओं की समष्टि मात्र है। इसलिये सब प्रकार के शरीर धारियों में मनुष्य शरीर ही मबसे श्रेष्ठ प्राणी है। मनुष्य की अपेक्षा श्रेष्ठ जीव कोई नहीं। देवताओं को भी ज्ञान प्राप्त करने के लिये मनुष्य जन्म धारण करना पड़ता है।

इसलिये मनुष्य ही ज्ञान प्राप्त कर सकता है और ज्ञान प्राप्त करना बिना संध्या योग के असम्भव है।

अब हम प्राणायाम के अध्यात्म विषय पर प्रकाश डालेंगे, जिससे आपको निश्चय हो जाय कि प्राणायाम साधन का उद्देश क्या है।



प्राणायाम का अध्यात्मक स्वरूप

—:०*०:—

सन्ध्या विज्ञान के मत में मेरु दण्ड (रीड की हड्डी) के भीतर 'ईड़ा' और 'पिंगला' नामक स्नाअनीय शक्ति और मेरु दण्ड की मज्जा में 'शुषुम्णा' नाम की एक सुन्य नाड़ी रहती है। इस सुन्य नाड़ी के सबसे निचले भाग में "कुण्डलिनी" शक्ति का आधार भूत पद्म अवस्थित है। योगियों का कहना है कि यह पद्म त्रिकोणाकार है। जब वह पद्म जागरित हो जाती है, तब उस शुन्य पोली नाली के भीतर जोर से ऊपर उठाने की चेष्टा करती है। जितनी ही कुण्डलिनो ऊपर को उठती है, उतना ही हमारा मन विकसित होता जाता है। उस समय अलौकिक दृश्य दिखलाई पड़ते हैं और साधक को नाना प्रकार की अद्भुत क्षमतायें प्राप्त होती हैं। जब यह कुण्डलिनो शक्ति मस्तिष्क में'पहुंच जाती है, तब साधक सम्पूर्ण रूप से अपने शरीर मन से पृथक हो जाता है, तब आत्मा मुक्ताभाव को अनुभव करने लगता है। शुषम्णा के बायें भाग में ईड़ा नाम की नाड़ी और दहने भाग में पिंगला नाम को नाड़ी रहती है और जो एक पोलो नाली इस मेरु मज्जा के ठीक बोचोंबीच निकली है, वही 'शुपुम्णा' नाम की नाड़ी है। नीचे की तरफ से इस नाड़ी का मुंह बन्द रहता है। कटिदेश में स्थित स्नायु जाल के निकट तक ही यह नाड़ी रहती है। आजकल के शारीरिक शास्त्र के मत में यह स्थान त्रिकोणाकार है। इन

नाड़ीसमूहों का केन्द्र मज्जा में रहता है। इन्ही केन्द्रों को सन्ध्या के मत में भिन्न २ पद्मों (कमलों) के स्वरूपों में माना जा सकता है।

सन्ध्या विज्ञानियों का कहना है कि सब से नीचे मूलाधार से आरम्भ हो कर ऊपर मस्तिष्क (सहस्रदल पद्म) चक्र के बीच में कुछ केन्द्र हैं। यदि हम इन चक्रों को भिन्न भिन्न नाड़ी जाल मानें तो वर्तमान शारीरिक विद्या की सहायता से सहजही में इसका रहस्य प्रगट हो जाता है। इसमें अन्तर्मुखी ज्ञानात्मक और बहिर्मुखी क्रियात्मक कह सकते हैं। इनमें से एक बाहर का ज्ञान ले आता है और दूसरा मस्तिष्क से सम्वाद ला कर बाहर कार्य कराता है। इन समस्त चक्रों में सबसे निचले भाग में (१) 'मूलाधार पद्म', मूलाधार के ठीक ऊपर स्थित (२) 'स्वाधीष्टान पद्म' इसके ऊपर नाभिदेश में (३) 'मणिपुर पद्म' इसके ऊपर हृदय देश के समीप (४) 'अनाहत पद्म', इससे कुछ ऊपर कण्ठ देश के समीप (५) 'वीशुद्धाख्य पद्म'. दोनों भोओं के मध्य में (६) 'आज्ञां पद्म', तथा उसके कुछ ऊपर मस्तक में (७) 'सहर्ष दल पद्म', रहते हैं। इनके विषय में ज्ञान रखना आवश्यक होता है।

संसार में विविध प्रकार की गतियों का प्रकाश देखने में आता है। तब यहां प्रश्न हो सकता है, कि तड़ित नाम से प्रसिद्ध गति विशेष में और इसमें क्या भेद है ? इसको समझने के लिये एक टेबुल का उदाहरण सामने रखते हैं। मानलो कि एक मेजकुछ परमाणुओं के सम्मिलिन से बनता है, यदि इस मेज के समस्त परमाणुओं का निरन्तर एक तरफ को संचालित किया जाय तो

यही विद्युत् शक्ति (बिजुली) के आकार में परिणत हो जायगा किसी भी पदार्थ के सम्पूर्ण परमाणुओं को एक तरफ प्रवाहित होते रहने को ही 'विद्युत्' गति कहते हैं। दूसरा उदाहरण—इस घर में जो वायु पुंज वर्तमान है, इसके समग्र परमाणुओं को यदि क्रमशः एकही संकीर्ण छेद में से प्रवाहित किया जाय तो वह एक महान विद्युत धारा यन्त्र (Battery) के आकार में परिणत हो जायगा। इसी तरह यह भाव समझ में आ जायगा कि सुषुम्णा के खुल जाने पर सम्पूर्ण वायु प्रवाह सुषुम्णा द्वारा सहस्रार पद्म में अवस्थित होकर शरीर व मन को निश्चेष्ट कर देता है और आत्मा शरीर से पृथक् होकर यत्र तत्र विचरण करने लगता है।

आधुनिक शारीरिक शास्त्र की एकबात हमें और समझ लेनी चाहिये, वह यह है, कि जो स्नायु केन्द्र श्वास प्रश्वास की गति को चलाता है, उसका कुछ प्रभाव सारे शरीर में स्नायुओं के ऊपर ही रहता है। यह केन्द्र छाती के पीछे मेरु दन्ड में रहता है। संध्या की भाषा में इसको 'अनाहत पद्म' या यों कहिये कि 'ॐ कन्ठः' कहा गया है। यह श्वास प्रश्वास की गति को चलाता है और जो स्नायु चक्कर शरीर में वर्तमान रहता है, उसके ऊपर भी कुछ थोड़ा बहुत प्रभाव रखता है।

अब हम प्राणायाम साधन का कारण अच्छी तरह समझ सकेंगे। इसको सुगमतया समझने के लिये इस प्रकार की व्याख्या की जा सकती है, कि सबसे पहले श्वास प्रश्वास की गति का एक तरफ होने का उपक्रम हो जायगा। संध्या की भाषा में जब मन विभिन्न दिशाओं में न जाकर एक ओर हो कर एक ही

दृढ़ इच्छा शक्ति में परिणत हो जाता है, उस समय सम्पूर्ण शक्ति एक तरफ हो कर विद्युत् के समान गति प्राप्त करता है। साधक की साधना का उद्देश्य इसी इच्छा शक्ति को ही प्राप्त कराना है। प्राणायाम विधि का इस प्रकार शारीरिक विद्या की सहायता से व्याख्या की जा सकती है, प्राणायाम द्वारा शरीर में एक प्रकार की गति उत्पन्न की जाती है, श्वासप्रश्वास यन्त्र के ऊपर अत्याधिक विस्तार करके शरीर में वर्तमान चक्रों को भी वश में लाने के लिये सहायता मिलती है। यहां पर संन्ध्या की भाषा में कुन्डल के आकार से अवस्थित कुंडलिनी शक्ति का उद्बोधन कराना है। हम जो कुछ देखते हैं, कल्पना करते हैं, अथवा कोई स्वप्न देखते हैं, सब आकाश तत्व में अनुभव करना होता है। यह दृश्य मान आकाश जो साधारण तथा प्रत्येक को दिखलाई देता है, उसका नाम (महाकाश) है। सन्ध्या साधक जब दूसरे के मन के भाव को प्रत्यक्ष करता है, तब वह उसको अपने चिदाकाश में पाता है जिस समय हमारा आत्मा सत स्वरूप में प्रकाशित होता है, उस समय उसका नाम 'चिदाकाश' दिया जाता है। जिस समय कुन्डलिनी शक्ति जागरित हो जाती है और जितने विषयों का ज्ञान होता है, वह सब चिदाकाश से होता है। जब हम अचेत पड़े रहते हैं, उस समय हमारा आत्मा सत स्वरूप में प्रकाशित होता है। जब कुन्डलिनी शक्ति की सीमा मस्तिष्क में पहुंच जाती है, उस समय साधक अलौकिक विषय शून्य ज्ञान अनुभव करता है।

हम बाहर से जिस वस्तु को देख या सुन सकते हैं वह सब का सबही पहले शरीर के भीतर और अन्त में मस्तिष्क में

पहुँचता है। इसके अतिरिक्त बाहर से जो क्रियायें होती हैं, वह सब मस्तिष्क के भीतर से बाहर आती हैं। मेरुमज्जा में स्थित 'ज्ञानात्मक' व 'क्रियात्मक' यह दोनों तरह के स्नायु गुच्छ योगियों की भाषा में क्रमशः ईड़ा और पिंगला नाड़ी के नाम से कहे जाते हैं। इन दोनों तरह की नाड़ियों के भीतर से ऊपर बताये हुए शक्ति प्रवाह का मध्यवर्ति पदार्थ न रहने पर भी मस्तिष्क के चारों तरफ विभिन्न प्रकार के सम्वाद का भेजना और अनेक स्थानों से सम्वाद का आना इस मस्तिष्क में ही विभिन्न प्रकार के सम्वाद पहुंचाने का काम फिर कैसे नहीं हो सकता है ? प्रकृति में तो इस प्रकार के दृश्य होते दिखाई देते हैं। सन्ध्यावादियों का कहना है कि इसमें सफल हो जाने पर ही मनुष्य सब के सब भौतिक बन्धनों से छूट जाता है। इस पर प्रश्न हो सकता है, कि इसमें सफल होने का उपाय क्या है ? उत्तर में दृढ़तया कहा जा सकता है, कि मेरुदण्ड के मध्य में स्थित सुषुम्णा के बीच में से यदि स्नायु प्रवाह चलाया जा सके तो यह प्रश्न समस्त हल हो सकता है। मन की शक्ति से ही यह स्नायुजाल निर्माण किया गया है। इस मन को ही यह जाल छिन्न भिन्न करके इस नाड़ी की सहायता न लेकर अपना काम करने की शक्ति प्राप्त करनी होगी। बस, जिस समय मन में यह सामर्थ्य आ गई कि उसी समय सम्पूर्ण ज्ञान हमारे आधीन हो जायगा। इस लिये सुषुम्णा नाड़ी को वश में करने की आवश्यता होती है।

साधारण लोगों का निचला भाग बद्ध रहता है, जिससे उसके द्वारा कुछ भी कार्य नहीं होता है। सन्ध्या का कहना है, कि इस सुषुम्णा का द्वार खोल कर उसके द्वारा स्नायु प्रवाह को चलाना एक निर्दिष्ट प्रणाली है उस प्रणाली में सफल

होने पर ही स्नायु प्रवाह इसके भीतर से चल सकता है। उस समय इस केन्द्र से एक तरह की क्रिया होती है, जिसको दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। उसमें एक को ज्ञान विरहित गतियुक्त केन्द्र और दूसरे को चैतन्यमय केन्द्र कहते हैं। सबका विषय ज्ञान, हमारे ऊपर जो बाहर से आघात करता है, उसका ही प्रतिघात मात्र है। जहां पर यह विषयानुभूति संस्कार समष्टि संचित रहती है, उसको 'मूलाधार' कहते हैं। और इस जगह पर जो क्रिया शक्ति संचित रहती है उसको ही 'कुण्डलिनी' कहते हैं। सम्भवतः शरीर के भीतर स्थित सम्पूर्ण गति शक्तियां इस कुण्डल के आकार में इसी स्थान पर संचित रहती हैं। क्योंकि बाहरी वस्तुओं के विषय में दीर्घ काल तक विचार करने के अनन्तर यह मूलाधार चक्र उष्ण होते देखा गयी है। यदि इस कुण्डलिनी शक्ति को जागरित करके ज्ञान पूर्वक सुषुम्णा नाली के भीतर एक केन्द्र से दूसरे केन्द्र तक ले जाया जावे, तो इससे अति तीव्र प्रतिक्रिया उपस्थित हो जाती है। जब कुण्डलिनी शक्ति का एक सामान्य अंश नसों के बीचोंबीच होकर प्रवाहित होता है, उस समय वह ही स्वप्न अथवा कल्पना के नाम से कहा जाता है। परन्तु बहुत काल पूर्ण ध्यान से सञ्चित शक्ति सुषुम्णा मार्ग से भ्रमण करती हैं। उस समय जो भ्रमण होता है, या परिवर्त्तन होता है, वह स्वप्न अथवा कल्पना के नाम से, अथवा ऐन्द्रिक ज्ञान की क्रिया से अनन्त गुणा श्रेष्ठ होता है, इसको ही अतीन्द्रिय अनुभव कहते हैं। इसी समय ही साधक को 'ज्ञानातीत' व 'पूर्ण चैतन्य' अवस्था प्राप्त होती है। जब वह सम्पूर्ण ज्ञान वा सम्पूर्ण अनुभूति के केन्द्र स्वरूप मस्तिष्क में पहुंचती हैं उस समय मानों माथे से

हो एक महान् ज्योति का प्रकाश होता है। इसका फल ज्ञानालोक या आत्मानुभूति है। क्योंकि कारण को जान लेने पर कार्य का निश्चय हो ही जाता है। इस प्रकार विचार करने से देखा गया है, कि कुंडलिनी शक्ति को चैतन्य करना ही 'तत्वज्ञान' 'ज्ञानातीतानुभूति' और आत्मानुभूति का एक मात्र उपाय है। जैसे किसी को भगवान् पर अगाध प्रेम बल के होने से ही कुंडलिनी जागरित हो जाती है, किसी २ की सिद्धि महात्माओं की कृपा से सहज में ही सफल हो जाती है। और किसी २ की कुंडलिनी शक्ति सूक्ष्म ज्ञान विचार द्वारा चैतन्य हो जाती है। चाहे किसी प्रकार की उपासना हो, वह अवश्य एक लक्ष्य तक पहुंचा देगी। अर्थात न्यूनाधिक साधना में एकाग्रता के तारतम्य के अनुसार कुण्डलिनी अवश्य चैतन्य होगी। जो इतने पर ही समझ बैठे हैं कि हमारी प्रार्थना का पारितोषिक मिल गया है, वे यह नहीं जान सके कि प्रार्थनारूप विशेष मनोवृत्ति के द्वारा वे अपने ही शरीर में वर्तमान अनन्त शक्ति की एक बूंद को जागरित करने में समर्थ हुये हैं। सन्ध्या साधकों का कहना है कि प्रत्येक के भीतर शक्तिरूप में परमेश्वर अपने आप विराजमान हैं। किस उपाय से उसके निकट तक पहुँच सकते हैं, इस बात को जान लेने पर ही हमारे ही शरीर में अनन्त सुख देने वाली शक्ति मौजूद है। इस लिये संध्या साधना ही धर्म विज्ञान और सम्पूर्ण उपासना और समग्र प्रार्थना तथा अलौकिक घटनाओं का वैज्ञानिक उपाय है।

४ प्रत्याहार

प्राणायाम सिद्ध कर लेने पर प्रत्याहार का साधन करना होता है। तो अब प्रश्न उठता है कि यह प्रत्याहार क्या है? तो ऊपर के प्रसंगों से आप जान ही चुके हैं, कि किस तरह से विषयानुभूति होती है। इसको और भी स्पष्ट करने के लिये सबसे पहले इस ओर देखो कि हमारे शरीर में इन्द्रिय द्वार स्वरूप बाहर के शारीरिक यन्त्र रहते हैं, फिर इन गोलकादि के अन्दर रहने वाली इन्द्रियां रहती हैं। ये इन्द्रियां मस्तिष्क में स्नायु केन्द्रों की सहायता से शरीर के ऊपर अपना कार्य कराती हैं, फिर इन इन्द्रियों के बाद मन रहता है, जब मन सब ओर से हटाकर किसी बाहरी वस्तु के साथ संलग्न रहता है, तबही हम उस वस्तु को अनुभव करते हैं। परन्तु मनको एकत्रित करके किसी इन्द्रिय में संयुक्त करके रखना बहुत ही कठिन कार्य है। क्योंकि मन प्रायः विषयों का दास बना रहता है।

सबही देशों में सबही घरों में यह शिक्षा मिलती है, कि 'सज्जन बनो'? 'सज्जन बनो'? इससे यह प्रतीत होता है कि ऐसा कोई मनुष्य नहीं है, जिसने ऐसी शिक्षा न पाई हो। परन्तु इनमें कोई भी अपने बालकों को दुष्कर्म से निवृत्त होने का उपाय नहीं बतलाता है। केवल मुंह के बल कह देने से ही कार्य नहीं चल सकता है। क्योंकि ऐसे कोरे उपदेशों से बार २ यही प्रश्न उठता है कि क्यों न चोरी करूं? क्यों बदमाशी न करूं? क्योंकि हमने चोरी बदमाशी न करने का उपाय तो बतलाया ही नहीं। केवल मुंह के बल से कह दिया कि कोई दुष्कर्म न करना चाहिए।

इन दुष्कर्मों से बचने के लिये तथा सन्मार्ग गामी होने के लिये मन के संयम की शिक्षा तो दी ही नहीं जाती है, जिससे यथार्थ उपकार हो सकता है! तब मन इन्द्रिय नामक भिन्न २ शक्ति केन्द्रों में संयुक्त रहता है, तबही हमारे शरीर के भीतर क्या बाहर सब के सब काम होते रहते हैं। इच्छा से या अनिच्छा से मनुष्य स्वभावतः भिन्न २ केन्द्रों में संलग्न रहने को बाधित है। इससे मनुष्य विविध प्रकार के कष्टों को भोगता है। यदि मन मनुष्यों के वश में रहे तो वह कभी भी अन्याय कर्म न करे, बल्कि उच्च कोटि का सच्चरित्रवान् बन कर अलभ्य सुख भोग करे।

अब प्रश्न उठता है कि मनः संयम करने का फल क्या है? इसका फल यह है कि वह अपने वशवर्ति हो कर विषयानुभूति केन्द्रों में संलग्न न रह पावेगा। इस प्रकार से हमारी इच्छायें व संकल्प हमारे वश में हो जायेंगे। इससे प्रश्न उठता है कि क्या यह सम्भव है? उत्तर में कहा जा सकता है, कि बिलकुल सम्भव है। आप यह समझ सकेंगे कि विश्वास बल से आरोग्यकारी सम्प्रदाय दुःख व कष्ट का अस्तित्व बिलकुल ही अस्वीकार करने की शिक्षा देते है। इसमें यह बात जरूर है कि इनके दर्शन (मत) की यह बात बहुत कुछ शिर के ऊपर से हाथ को घुमाकर नाक पकड़ने के बराबर है। परन्तु यह भी एक तरह की योग की प्रक्रिया है, किसी तरह से उन्होने इसे प्राप्त कर लिया है। जहां पर वे दुःख कष्ट का अस्तित्व अस्वीकार करने की शिक्षा देकर लोगों का दुःख दूर करने में समर्थ

होते हैं, जानना चाहिये कि उन सब स्थानों में वे यथार्थ में प्रत्याहार के एक अङ्ग की शिक्षा देते हैं। क्योंकि वे अपने चिकित्साधोन व्यक्तियों के मन को इतना बलवान कर देते हैं' कि जिससे वे इन्द्रियों की बात प्रमाणित नहीं मानते। लेकिन यह है एक प्रकार का प्रत्याहार ही।

प्रत्याहार और उसका साधन

जो मनुष्य अपने मन को इन्द्रियों के वशीभूत न बना कर इन केन्द्रों से मन को हटाने में कृतकार्य हो सकते हैं समझ लेना चाहिये कि उसको प्रत्याहार की सिद्धि हो गई है। प्रत्याहार शब्द का अर्थ भी यही है कि इच्छा के अनुसार मन को एक तरफ जुड़ाना और उसको इच्छानुसार इन्द्रियों में संयुक्त करना और उसको हटा सकने की सामर्थ्य प्राप्त करना, अथवा यों कह सकते हैं कि बाह्य गति को रोक कर इन्द्रियों की आधोनता से मुक्त कर भोतर की तरफ आचरण करना इसमें सफल होने पर ही हम यथार्थ में चरित्रवान् बन सकते हैं और तब समझना चाहिये कि यह मुक्ति मार्ग का अवलम्बन कर रहा है। जब तक हम अपने को ऐसा न बना सकें तब तक हमें अपने को जड़ यन्त्र के समान अधिक शक्तिशाली न समझना चाहिये।

मन का संयम करना बहुत कठिन कार्य है। इसलिये शास्त्रों में जो इसको उन्मत्त बानर कहा है, वह कुछ असंगत नहीं। बस, मनुष्य का मन भी इसी बानर के सदृश है। जैसा की बानर को मदिरा पिलाया जाय और साथ ही उसे बिच्छू काट खाय, तब देखना चाहिये कि उस बानर

की क्या दशा होती है। यही दशा मनुष्य को भी है। क्योंकि एक तो, मनुष्य का मन इतना चंचल रहता ही है, फिर वासनारूपी मदिरा उसे हर समय दबाये रहती है, तब अगर ईर्ष्यारूपी बिच्छू उसे काट खाय और अंहकाररूपी पिशाच उसके मस्तिष्क में प्रवेश कर जाय तो अब उस मनुष्य की मन की क्या दशा होगी ?

मन संयम करने की पहली विधि यह है कि कुछ थोड़ समय के लिये नेत्र मूंद कर चुपचाप बैठ जाओ और मनको अपनी इच्छानुसार दौड़ने फिरने दो। मन स्वभावत: अस्थिर है, वह अपने संकल्प विकल्पों को लेकर आसमान् पाताल चढ़ने उतरने का प्रयत्न करेगा। परन्तु तुम धीरता पूर्वक प्रतीक्षा करो, कि अन्त में आपहो थक कर परास्त हो कर आपके आधीन हो जायगा। जब तक मन की क्रियाओं को न जान सकोगे, जब तक उसे नियम बद्ध नहीं कर सकोगे। इसलिये अपना लक्ष्य बना रखने के लिये मन को उसके इच्छा पर चलने देना चाहिये। इससे स्वभावत: भयानक से भयानक डरावनी चिन्तायें तक तुम्हारे मन में आवेंगी, यहां तक की इतनी भयावनी भावनाओं पर तुम्हें आश्चर्य होगा। परन्तु देखोगे कि इस मन की क्रीड़ायें प्रतिदिन कम होतो जा रही हैं और मन कुछ न कुछ स्थिरता को प्राप्त हो रहा है। कुछ दिन तो लाखों हजारों चिन्तायें तुम्हें चिन्तित करेंगी, लेकिन कुछ ही महीनों में कम होकर मन तुम्हारे अधीन हो जायगा। जब तक विषय हमारे सामने रहेंगे, तब तक मन अवश्यही चञ्चलता धारण किये रहेगा, लेकिन शनैः २ ज्ञान प्राप्त होकर इन चिन्ताओं का कारण पूछेगा, तब ही वह स्थिरता

धारण करता चला जायगा , परन्तु साधक का धैर्यपूर्वक ध्येय का अवलम्बन कर प्रतिदिन नियमित रहकर अभ्यास करते रहना *चाहिये । इसलिये यदि* हम दूसरे व्यक्ति को दिखाना चाहें, तो हमें दिखा देना चाहिये कि हम किसी के आधीन इशारे पर चलने वाले यन्त्र नहीं हैं । मनको संयम करना, और इसको भिन्न २ इन्द्रियों के विषयों में न जाने देना ही 'प्रत्याहार' कहलाता है । आप से बहुत से लोग पूछेंगे कि यह कितने दिनों में सफल हो सकेगा ? उत्तर में कहा जा सकता है कि यह एक दिन में होने वाला कार्य नहीं है, इसको सिद्ध करने के लिये बहुत दिन नियमबद्ध हो कर अभ्यास करना होता है । धैर्यपूर्वक सहिष्णुता के साथ अभ्यास करते रहने से सफलता अवश्य प्राप्त होती है ।

धारणा और उसकी साधन विधि

—:*०*:—

प्रत्याहार सिद्ध होने पर फिर धारणा के अभ्यास में कृतकार्य हो सकते हैं। कुछ समय तक प्रत्याहार साधन करने के अनन्तर धारणा का अभ्यास करने की चेष्टा करनी चाहिये। धारणा शब्द का अर्थ मन को शरीर के अन्तवर्ति या बहिर्देशस्थ किसी एक स्थान में धारण या स्थापन करना है मन को किसी स्थान में स्थापन करने का अर्थ यह है, कि सब ओर से बल पूर्वक हटा कर एकही निश्चित स्थान पर स्थापित करना ही 'धारणा' कहलाता है। जैसे मन को सब ओर से हटाकर बलपूर्वक केवल हाथ के ऊपर स्थापित किया, इससे क्या हुआ कि शरीर के अन्य अवयव उस समय चिन्ता के वशीभूत न होकर निश्चेष्ट हो कर शिथिल हो जायेंगे और हाथ ही केवल ध्येय रह जायगा। धारणा कई प्रकार की होती है। इसकी साधना करते समय कुछ कल्पना शक्ति की सहायता लेनी चाहिये। उदाहरण के लिये मानलो कि हृदय में स्थित एक बिन्दु के ऊपर हमें मन को धारण करना है। इसको कार्य में परिणत करना बहुत कठिन काम है। इसलिये इसका सरल उपाय यह है कि हृदय में एक पद्म की कल्पना करो, अथवा मस्तिष्क में 'सहस्रदल पद्म' कमल या पूर्वोक्त सुषुम्णा के मध्यस्थित चक्रों में से किसी एक को ज्योति से परिपूर्ण रूप कल्पना करने से मन उसमें सहज ही में टिक सकता है।

साधक को ऊपर लिखे अनुसार नियमपूर्वक प्रतिदिन साधना करनी चाहिये। इसके लिये निर्जन (एकान्त) स्थान सदा प्रयोजनीय होना है। क्योंकि जीनाकीर्ण स्थान में रहने से विभिन्न प्रकृति के साथ व्यवहार रहने से मन विक्षिप्त (चंचल) हो जाता है। उसको अधिक बातें भी न करनी चाहिये। यह देखा गया है, कि सारे दिन कठिन परिश्रम करने के अनन्तर मन संयम नहीं किया जा सकता है। जो ऊपर बताये नियमों को दृढ़ संकल्प के साथ पालन कर सकें, वही सध्या साधन का अधिकारी है। सदाचार की ऐसी अद्भुत शक्ति है कि—थोड़ा सा भी सत्कर्म करने पर भी बहुत महान् फल की प्राप्ति हो सकती है। इससे किसी का अनिष्ट भी नहीं हो सकता है और सब उपकार ही होता है।

इस प्रकार धारणा के साधन का सबसे पहला फल विविध प्रकार की स्नायुओं की उत्तेजना शान्त होगी, मन में शान्त भाव विराजमान होने लगेगा, सब बातें अच्छी तरह देख सकने की व समझ सकने की सामर्थ्य आ जायेगी। प्रकृति (स्वभाव) में मधुरता आ घुसेगी। स्वास्थ्य क्रमशः अच्छा होने लगेगा। इस प्रकार संध्या साधन में फलस्वरूप ये चिन्ह प्रगट होते हैं। स्वर भी सुन्दर सुमधुर हो जाता है। इसके अतिरिक्त उस समय और भी बहुत से अद्भुत चिन्ह प्रगट होते हैं। जो साधक अधिक सचेष्ट हो कर अधिकाधिक साधन करते हैं, उनमें और अधिक लक्षण प्रगट होते हैं। उसको कभी बहुत दूर से घण्टा बजने का जैसा शब्द सुनाई पड़ता है। मानो बहुत घण्टे बज

रहे हों। समय २ पर और भी बहुत से अलौकिक दृश्य दिखलाई पड़ते हैं। छोटे २ अलौकिक कणों आकाश में उड़ती दिखाई देंगी, अतीन्द्रिय जीव विचरित होते भी दिखाई देंगे, तब समझ सकोगे कि मुझे साधना में सफलता प्राप्त हो रही है। जो साधक इससे भी अधिक उन्नति प्राप्त करना चाहते हैं, उन्हें पहले पहल दूध व फलहार* ही पर निर्वाह करना चाहिये। इससे साधना में अधिक सहायता मिलती है। जो साधारणतया कुछ अभ्यास करना चाहें, उन्हें भर पेट भोजन न खाकर अल्पाहार ही में सन्तुष्ट रहना चाहिये।

बाहरी जगत को छोड़ कर सबही विघ्न बाधाओं से दूर रह कर अपने भीतर स्थिर सत्यतत्व का विकसित करने के लिये प्रयत्नवान् होना चाहिये। नये विचारों को ग्रहण कर और फिर उसका नवीनता चले जाने पर फिर किसी दूसरे नये विचार का आश्रय करना, इस तरह क्रमशः बारम्बार करते रहने से हमारी शक्ति विविध ओर जाकर थक जाती है, या बट जाती है। इस प्रकार साधक में नूतनप्रियता रूप विपत्ति आ जाया करती है। इसलिये दृढ़ता पूर्वक संयम करने के साथ एकही विचार ग्रहण करने चाहिये और अन्ततक उसको ही लेकर रहना चाहिये। उसका रहस्य जाने बिना कभी भी न छोड़ना चाहिये। इस तरह से जो एक विचार लेकर आन्तरिक रहस्य मय जगत में मस्त हो जाते हैं, उनके ही हृदय में सत्यतत्व का प्रकाश चमक उठता

* भक्ष्याभक्ष्य का कुछ भी विचार न रखते हुए केवल संसारिक उपभोग ही में ईश्वर की हस्ति को मिटा देना यह ईश्वर की महिमा नहीं है तो क्या है?

है। इसलिये जिस विचार को लेकर उठो, उसी में रातदिन सोते उठते खाते पीते में ही समाजाना चाहिये। अपने मस्तिष्क, स्नायु अथवा सारे शरीर को उसी में अर्पण कर देना चाहिये। यही सिद्धि प्राप्त करने का एक मात्र उपाय है। इसी उपाय से बहुत साधना में सिद्धि प्राप्त कर महान् हो योगी हो गये। शेष सब के सब वाकूयन्त्र रूप जड़वत् बने हुये हैं। यदि इस प्रकार परमतत्व को उपलब्ध कर स्वयं कृतार्थ होने व दूसरे का उद्धार करने की इच्छा करें तो व्यर्थ के गपोड़े बाजी छोड़कर अन्ततक दृढ़ता पूर्वक पहुँचने का प्रयत्न करें तबही हम अपना और दूसरे का भला करने में समर्थ हो सकेंगे।

इसमें चढ़ने के लिये प्रथम सीढ़ी यह है, कि मन को किसी तरह भी विभिन्न विचारों से चंचल न होने देना चाहिये। जिसके साथ बातचीत करने में किसी प्रकार मन के चंचल होने की सम्भावना हो, उस का साथ ही छोड़ देना चाहिये। इसलिये साधक को स्थानविशेष से या व्यक्ति विशेष से घृणा हो तो उसे तत्काल त्याज्य करना ही श्रेष्ठ है। क्योंकि प्रत्यक्ष दर्शी योगियों का कहना है, कि साधक को सब तरह का संग छोड़ देना चाहिये, सदैव सद्विचार निरत सज्जनों का ही साथ करना चाहिये। दृढ़ता पूर्वक साधन आरम्भ कर दो, यहां तक की मर खप भी जांय तो उसकी चिन्ता न करो। दूसरा जन्म लेकर इसी अनुष्ठान में आरूढ़ हो जाओ। क्योंकि यह आपकी मानसिक इच्छा के ऊपर निर्भर है। जो साधक थोड़ा २ करके उन्नत होना चाहें, उन्हें कुछ विशेष उन्नति का साधन करना चाहिये।

मैं एक चुल्लू में समुद्र को सुखा दूंगा, मेरी इच्छा होते ही बड़े २ पर्वत चूर २ हो जायेंगे। इस प्रकार का तेज और संकल्प का अवलम्बन कर खूब दृढ़ता पूर्वक साधना करो, निश्चयही आपको उस परमपद की प्राप्ति होगी।



७—ध्यान ८—समाधि

•:❋:•

पिछले प्रकरणों में हम एक तरह से संध्या योग के अन्तरङ्ग साधनों के अतिरिक्त सबही अङ्गों के विषय में कह आये हैं। अब शेष अन्तरङ्ग साधना के विषय में यहां लिखते हैं। इस अन्तरङ्ग साधना से एकाग्रता प्राप्त करनी है, और यही एकाग्रता लाभ करना सन्ध्या की चरम सीमा है। हमें जो कुछ ज्ञान है, जिसे विचार लब्ध कहते हैं, यह सबका सब ही हमारे अहंपूर्वक स्वाभाविक ज्ञान के ऊपर निर्भर है। हम इस टेबुल को जानते हैं, या हम किसी व्यक्ति के अस्तित्व की बात जानते हैं, तब स्वभाविक ज्ञान के कारण ही यह समझने में समर्थ होते हैं, कि अमुक पदार्थ उस स्थान में है। यह तो हुई एक ओर की बात, इसके अतिरिक्त दूसरी ओर भी यह बात पाते हैं कि हमारे शरीर के भीतर ऐसी २ वस्तुयें हैं जिनके विषय में हमें कुछ भी ज्ञान नहीं है।

जब हम अहार करते हैं, उस समय उसके विशेष ज्ञान पूर्वक करते हैं, परन्तु जब हम उसका सारभाग अपने भीतर ग्रहण करते हैं और जब वह रक्तरूप में परिणत होता है तब भी वह हमारी अज्ञात दशा में होता है। जब हम इस रक्तरूप का भिन्न २ भागों में भिन्न २ प्रकार से गठन निर्माण होता है, उस समय भी वह हमारी अज्ञात

दशा में ही होता है। परन्तु यह सब व्यापार हमारे ही द्वारा होता है। क्योंकि इस शरीर के भीतर कोई दस बीस मनुष्य तो बैठे हुए नहीं है, जो इन सब कामों को करते हों ? यहां पर यह आपत्ति उठ खड़ी होती है, कि आहार तो हम करते हैं, लेकिन भोजन का परिचालन कोई और विशेष व्यक्ति के हाथ में होगा ? यह बात तो नहीं है, बल्कि यह काम हमारी अज्ञात दशा में हम ही से हुआ है, उसमें प्रत्यक्ष हमारा हाथ कुछ भी नहीं है। परन्तु इस हृदय का काम भी अभ्यास द्वारा अपनी इच्छा के आधीन किया जा सकता है। इससे यह सिद्ध हुआ है कि जो कार्य हमारी अज्ञात दशा में होते हैं, उनको भी हम ही करते हैं। लेकिन अज्ञात दशा में। इसलिये विचार से देखा गया है, कि मनुष्य दोनों अवस्था में काम करता है। इसका तात्पर्य यह है कि जिन सब कामों को करते समय केवल "मैं" का ज्ञान रहता है, वह सब ज्ञान "ज्ञानभूमि" से सिद्ध होते हैं। जो सब काम ज्ञान की भूमिका में, अर्थात जिसमें 'मैं' का ज्ञान नहीं रहता उसको अज्ञान भूमि कहते हैं। पशुओं में इन अज्ञांत् पूर्वक कार्यों को 'सहजात ज्ञान' कहते हैं। उनकी अपेक्षा मनुष्य प्राणी में जिनमें अहंभाव रहता है इनको ही ज्ञान पूर्वक क्रिया कहते हैं।

ज्ञानातीत भूमिका के कारण

इन दोनों पर विचार करने से मन की सब भूमिकायें की गई हैं, यह बात नहीं है, क्योंकि मन इन दोनों से भी उच्चतर भूमिकाओं में विचरण कर सकता है, बल्कि अभ्यास द्वारा क्रम से मन ज्ञान के भी अतीत अवस्था

में पहुँच सकता है। जैसे अज्ञान भूमि से जो कार्य होते हैं उसी तरह ज्ञानातीत भूमि से भी कार्य हो सकता है। अहंभाव का काम केवल मध्य अवस्था में हुआ करता है। जब मन अहंज्ञान रूप रेखा से भी ऊपर वा नीचे विचरण करता है उस समय उसको ही 'समाधि' पूर्ण चैतन्य भूमि वा 'ज्ञानातीत भूमि' कहते हैं। किस प्रकार जाना जा सकता है कि मनुष्य ज्ञान भूमि के निम्न प्रदेश में भी जा सकता है, अथवा बिलकुल हीन दशा में पहुँच सकता है? इसका उत्तर यह है कि उस दशा में पहुँचा हुआ उसके लक्षणों से ही किया जा सकता है। जब कोई गहरी नींद में सोया हुआ होता है, तब यह ज्ञान भूमि के निम्न प्रदेशों में पहुँचा होता है, उस समय भी वह अज्ञान दशा में शरीर के समस्त कामों को अर्थात् नियमित श्वास प्रश्वास लेना, यहां तक की शरीर को इधर उधर हिलाना तक करता है। उसके इस काम में किसी प्रकार का अहंभाव नहीं रहता, वह उस समय अज्ञान से आच्छादित रहता है। फिर नींद से जब वह उठता है, तब वह जैसे पहले था वैसे ही अब भी है, उसमें किसी प्रकार की विलक्षणता नहीं आई। उसमें किसी प्रकार के नवीन तत्व जागरित नहीं हुये। परन्तु संध्या साधक जब समाधि अवस्था में रहता है, तब वह सोने से पहले महामूर्ख अज्ञानी रहा हो तो समाधि टूटने के अनन्तर वह महाज्ञानी होकर आया है।

अब आप विचार कीजिये, इस विभिन्नता का कारण क्या है? एक अवस्था में मनुष्य जैसा गया था, वैसा ही लौट आया और दूसरी अवस्था में दूसरे का ज्ञानालोक प्राप्त

हुआ और वह महासाधु और सिद्ध पुरुष बनकर आया, उसका स्वभाव बिलकुल परिणत हो गया। यहां तो इन दोनों अवस्थाओं में भिन्न २ फल होते हैं। इससे सिद्ध हुआ कि भिन्न २ दशा होने से भिन्न २ अवस्था व अज्ञान अवस्था वा साधारण ज्ञानावस्था अथवा बिलकुल उच्चतर अवस्था है और यही ज्ञानातीत भूमिका नाम की 'समाधि' अवस्था है।

अब प्रश्न उठता है, कि इस समाधि साधन की क्या आवश्यकता है ? हमारे जीवन में इस समाधि की आवश्यकता कहां है ! इसके उत्तर में कहा जा सकता है, कि इसकी नितान्त आवश्यकता है। हम जिन सब कामों को करते हैं, जिनको विचार अधिकार भूमि कहा जा सकता है, वह बहुत ही संकीर्ण दायरे के अंदर चल सकती है। वह जितनी युक्ति राज्य से बाहर निकलना चाहती है, उतनी ही असम्भव प्रतीत होती है। अविनाशी आत्मा है, या नहीं। ईश्वर का अस्तित्व है, या नहीं। इन सब बातों को निर्णय करने में युक्ति बेचारी पंगु हो जाती है। युक्ति कहती है, मैं अज्ञेय वादी हूं। मैं किसी बात के लिये हां, या ना, कुछ नहीं कह सकती। परन्तु ज्ञेय वादी इस बात का निर्णय करना अत्यन्त आवश्यक बतलाते हैं, और मनुष्यत्व का अभाव न हो, ऐसा कहने की शिक्षा देते हैं। यदि मनुष्य जीवन पांच मिनट का होता और यदि संसार कुछक परमाणुओं का आकस्मिक सम्मेलन मात्र होता, तो हम दूसरे का उपकार ही क्यों करें ? या न्याय दयापरायणता और परस्पर सहानुभूति के संसार में रहने की आवश्यकता ही

क्या है ? अगर है तो जो जिसके जी में जो आवे वैसा ही करे। अगर हमें भविष्य के अस्तित्व की आशा नहीं है, तो हमें अपने भाई का गलाही क्यों न काट डालें ? यदि कुछ कठोर अभेद्य जड़ नियम हो सर्वस्व हों, तो हम जिससे सुखी रह सकें वही हमारा एक मात्र कर्त्तव्य रह जाता है।

आज कल बहुतों का विचार ऐसा है, कि नीतिपूर्वक वर्तने से बहुतों का उपकार होता है। वे अपने विचार की इस प्रकार से व्याख्या करते हैं, कि जिससे अधिकांश लोगों का अधिक परिणाम में सुख स्वच्छन्दता हो सकती हो, बस यही नीति एक मात्र आवश्यक है। हम ऐसे लोगों से प्रश्न कर सकते हैं, कि इस प्रकार को थोथी दलील द्वारा हम नीति की दिवाल पर खड़े हो कर नीति पालन करें, इसका प्रबल प्रमाण आपके पास क्या है ? यदि आप के पास इसका कोई प्रबल हेतु न हो और यदि हमारी ही बात ठीक ठहरे तो तब अधिकांश लोगों का अनिष्ट ही क्यों न कर डालें ?। हितवादी गण हमारे इस प्रश्न की मीमांसा किस प्रकार करेंगे ? इन दोनों में कौनसी अच्छी है ? इसका निर्णय आपही कीजिये। क्योंकि एक व्यक्ति अपनी सुख वासना से परिचालित हो कर वह अपनी वासना को किसी उपाय से भी तृप्त करता है ! यह उसका स्वाभाविक गुण है। वह इतना ही जानता है, इससे अधिक कुछ नहीं जानता और न जानने की इच्छा करता है। वह यह तर्क देता है, कि मेरी वासना थी, मैंने इसे पूर्ण किया ? तुम्हें इस में आपत्ति करने का क्या अधिकार है ? अब फिर प्रश्न उठता है, कि मनुष्य जीवन के ये महान् सत्य नीति, आत्मा

का अमरत्व, ईश्वर प्रेम, सहानुभूति, सज्जनता, इन सबसे महान् सत्य निःस्वार्थपरता ये सब भाव हमारे में कहां से आ गये ?

सम्पूर्ण नीति शास्त्र, मनुष्य का समस्त कार्य, समग्र चित्तवृत्ति यह सब के सब मनुष्य में स्वभावतः विद्यमान हैं। एक मात्र निःस्वार्थपरता ही मनुष्यता की आधार शिला है। मनुष्य जीवन के सम्पूर्ण भाव इस निःस्वार्थ परतारूप एक बात के भीतर शामिल किये जा सकते हैं। मैं स्वार्थ शून्य क्यों होऊं ? निःस्वार्थ होने की आवश्यकता क्या है ? किस शक्ति के बल से निःस्वार्थ होऊँ ? मैं मुक्तिवादी हूं ? मैं हितवादी हूं ? अगर अपने में युक्ति न दिखा सका तो हम आप को युक्तिशून्य कहेंगे। हम पशुओं के समान आचरण ही क्यों न करें ? हम दूसरे को ठग कर दूसरे का सर्वस्व हरण कर सब से अधिक सुख प्राप्त कर सकते हैं। हितवादी गण इसका क्या उत्तर दे सकेंगे ? लेकिन संध्या विज्ञान का कहना है, कि—परिदृश्यमान जगत् एक अनन्त समुद्र का छोटा सा बुद्बुदा है, जिन्होंने निःस्वार्थ भाव का प्रचार किया था, निःस्वार्थ परायणता होने की शिक्षा दी थी, उन्होंने इस महान् तत्व को कहां से पाया ? जब कि हम अच्छी तरह से जानते हैं कि मनुष्यों का यह स्वाभाविक ज्ञान नहीं। मनुष्यों की विचार बुद्धि युक्ति में भी यह नहीं मिलता और न उन से इस तत्व के विषय में कुछ जाना ही जाता है, तब उन्होंने इस महान् तत्व को कहां से पाया ?

इतिहास पढ़ने से मालूम होता है कि संसार में उत्पन्न हुये सब के सब धर्म शिक्षक कह गये हैं कि—हमने इस सत्य तत्व को संसार के अतीत (परे) के स्थान से प्राप्त किया है। उनमें बहुतों को यह भी मालूम न हो सका हो कि यह सत् तत्व कहां से प्राप्त हुआ ? बहुतों ने यह भो कहा है कि—एक स्वर्गीय दूत पंख फड़फड़ाते मेरे पास आ कर यह सब कुछ कह गया है, कि—'हे मनुष्यो मैं स्वर्ग से एक सुसमाचार लाया हूं, तुम इसको ग्रहण करो'। एक धर्म प्रचारक कह गये हैं कि—"एक तेज पुञ्ज देवता ने मेरे समीप प्रगट होकर मुझे इन तत्वों का उपदेश किया"। एक और दूसरे धर्म प्रवर्तक कह गये हैं कि- "मैंने अपने मृत पितरों को देखा, उन्होंने मुझे यह सब उपदेश किया" इसके अतिरिक्त वे इस विषय में और कुछ नहीं बतला सकते। किन्तु सबने ही एक स्वर से स्वर्गीय दूत का दर्शन, ईश्वरीय वाणी का सुनना, अथवा किसी आश्चर्य अलौकिक का दर्शन किया। जिससे यह सिद्ध हुआ कि उन्होंने युक्ति व तर्क के द्वारा ज्ञान को प्राप्त नहीं किया। हमने जगत के अतीत अतीन्द्रिय प्रदेश से यह सत देव वाणी को सुना या प्राप्त किया। परन्तु सन्ध्या विज्ञान का मत क्या है ? वह क्या कहता है ? वे धर्म प्रचारक ठीक ही कह गये हैं, कि यह ज्ञान उन्होंने अतीत प्रदेश से पाया है। परन्तु उनका यह प्रदेश केवल उनमें ही था। इस विषय में संध्या का कहना है कि—मनही की ऐसी एक विशेष अवस्था है, जिस अवस्था में वह मन युक्ति और विचार के साम्राज्य से परे चला जाता है, उस समय वह मन ज्ञाना-

तीत अवस्था को प्राप्त करता है, तबही उस महान् आत्मा को सम्पूर्ण विषय ज्ञान से अतीत परमार्थ ज्ञान लाभ होता है। यह परमार्थ ज्ञान विचार को सीमासे परे, का ज्ञान के समाधान में तर्क व युक्ति कुछ काम नहीं कर सकती, जिसके सुलझाने में संसार का साधारण मानुषीज्ञान निष्फल हो जाता है। इसको मनुष्य कभी अकस्मात् भी प्राप्त कर लेताहै और इस दशा में वह व्यक्ति इस अतीन्द्रिय ज्ञान लाभ के विषय में अनभिज्ञ रह जाता है। ऐसे अकस्मात सिद्ध लोग साधारणतया यह विश्वास कर लेते हैं कि यह ज्ञान मनुष्य की विचार शक्ति के बाहर किसी प्रदेश से आया है। इससे यह अच्छी तरह से समझ में आजाता है कि इस परमार्थिक ज्ञान का विकास सब देशों में एक ही प्रकार का होने पर भी किसी देश में कोई देवता दे गया, अथवा स्वयं भगवान् आकर दे गया, ऐसा सुना जाता है। परन्तु है वास्तव में यह सब ज्ञान हमारे ही आत्मा का, जो आत्मा में स्वभावतः वर्तमान रहता है किन्तु प्रत्येक व्यक्ति ने अपने स्वदेश की शिक्षा व विश्वास के अनुसार इसको भिन्न २ प्रकार से वर्णन किया, इसलिये इस भूमि में पहुंचने का फल परमार्थ ज्ञान होने पर भी उन्हें उस स्थान का पता न लगा।

योगियों का कहना है. कि इस ज्ञानातीत अवस्था में हठात् पहुंचने से बहुतसी आपत्तियां भी हो सकती हैं। यहां तक कि विकृत मस्तिष्क होने तक की सम्भावना बनी रहती है। इसके अलावा अकस्मात् ज्ञान प्राप्त करने वाले धर्माचार्य चाहे कितने ही बड़े क्यों न हो गये हों, परन्तु उनमें परम्परागत अन्ध विश्वास कुसंस्कार मिले हुये होने से उस शैली को

ही दूसरे रूप में बदल देते है। वे अपने मनमें विविध प्रकार के भ्रम ज्ञान (अशुभ विचारों) को आने का अवसर देते गये। क्योंकि उनमें रोकने की शक्ति का अभाव था।

इन ऊपर वर्णन किये हुये योगाङ्गों को ठीक वैज्ञानिक उपायों द्वारा साधन करने से समाधि अवस्था निर्विघ्नता पूर्वक प्राप्त हो जाती है और यह भी जानना जरूरी है कि यह परमारर्थिक ज्ञान जो महान् आत्माओं ने प्राप्त किया था, वह प्रत्येक मनुष्य के भीतर स्वभावत: वर्तमान है। अन्य साधारण मनुष्यों की अपेक्षा इनमें कोई विशेषता थी यह बात नहीं है बल्कि वे हमारे ही समान मनुष्य थे। परन्तु वह संध्या साधन द्वारा उच्च महा पुरुष योगी थे। उन्होंने पूर्वोक्त ज्ञानातीत अवस्था को प्राप्त किया था। चेष्टा करने पर हम भी इसी अवस्था को प्राप्त कर सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को यह अवस्था प्राप्त करनी सम्भव है, बल्कि समय आवेगा जबकि प्रत्येक देश, प्रत्येक जाति, प्रत्येक मनुष्य इस साधना को ही अपना परमधर्म समझेंगे।

सारा जीवन विचार व तर्क में ही बितादें तो एक पग भी हम उन्नति नहीं कर सकते। स्वयं प्रत्यक्ष अनुभव किये विना क्या कभी कोई उस तत्व को प्राप्त कर सकता है? कुछ पुस्तकें पढ़ लेने से क्या कोई व्यक्ति चिकित्सक बन सकता है? किसी नक्शे को देखने से हमारी देश देखने की अभिलाषा पूर्ण हो सकती है? भगवान का ज्ञान केवल इस पुस्तक में है या इस शास्त्र में लिखा है, ऐसा कहने की अपेक्षा अधिक भगवान की निन्दा क्या हो सकती है?

भगवान् को अनन्त कहना और जानना, फिर उसको एक पोथी के अन्दर बांधना चाहता है ? कितना दुराग्रह, कितना अन्याय है ? और साथ ही जिन्होंने ऐसा नहीं माना कि "इस पुस्तक के अन्दर भगवान कैसे आ सकते हैं,,? उनको लाखों की संख्या में हत्या की गई। परन्तु अब भी लाखों मनुष्य ऐसे हैं, जो ऐसे विश्वास में पूरी तरह जकड़े हुए है। हां, हिंदुओं का वेद यह अवश्य कहता है कि—मैं मनुष्य प्राणी के लिये पूर्णतः ज्ञानवान हूं, वह भी योग द्वारा।

हम संसार में समय २ पर सिद्धि प्राप्त महापुरुषों की जीवनियों का अवलोकन करके देख पाते हैं, कि समाधि प्राप्त करने में विपत्ति की आशंका रहने पर भी हम समझ सके हैं, कि वह अनन्य भक्त थे। चाहे किसी तरह भी हो उन्होंने इस अवस्था को प्राप्त किया था। परन्तु इसपर हमें यह देखने में आता है, कि जब २ कोई महापुरुष केवल अपनी उच्च भावना के द्वारा परिचालित होकर इस अवस्था को प्राप्त हुए हैं, उन्होंने ही कुछ सत तत्व प्राप्त किया है। परन्तु यह बात भी सत्य है, कि उसके साथ २ कितने ही कुसंस्कार आदि भी उनमें आये हैं। उनकी इस शिक्षा के भीतर जो कुछ उत्कृष्ट अंश है और उस अंश से जैसे संसार का उपकार हुआ है, इन कुसंस्कारों के कारण उतना ही अनिष्ट और अवनति भी हुई है।

मनुष्य जीवन विविध प्रकार के विपरीत भावों से आक्रान्त होने के कारण अनियमित है, परन्तु इस अनियमित के भीतर कुछ नियमता व सत्य लाभ करने के लिये हमें तर्क व युक्ति के अतीत प्रदेश में जाना होता है। परन्तु इसको धैर्य

पूर्वक धीरे २ करना चाहिये। नियम पूर्वक साधना द्वारा व वैज्ञानिक उपायों द्वारा वहां तक पहुंचना चाहिये और सारे कुसंस्कार (अन्धपरम्परा) हमें छोड़ देने चाहिये। जैसे और किसी तरह का विज्ञान को सीखने के समय एक निश्चित प्रणाली का अवलम्बन करते हैं। संध्या विज्ञान में भी इसी प्रकार की निर्दिष्ट प्रणाली का अवलम्बनकरना आवश्यक होता है। युक्ति का आश्रय इस मार्ग में विशेष प्रयोजनीय होता है। तर्क व युक्ति हमें जहां तक ले जा सकती है. वहां तक इसी के सहारे से चढ़ना चाहिये। इसके अनन्तर जब ऐसी अवस्था में पहुंचा जाय, जहां तर्क वितर्क कुछ न चल सके, वहां युक्ति ही सर्वोच्च अवस्था की बात दिखाई देगी। इसपर यदि कोई आ कर कहे कि—मैं भगवान वशिष्ठ हूं, या इसी तरह की युक्ति शून्य अंडबंड बकता फिरे, उसको बात पर जरा भी ध्यान न दिया जाय। क्योंकि पहले हम जो तीन अवस्थाओं की बात कह आये हैं, यथा पशु पक्षियों में सहजात ज्ञान विचार पूर्वक ज्ञान व ज्ञानातीत अवस्था, ये सब एकही मन को अवस्थायें हैं। एक मन में तीन अवस्थायें नहीं रह सकती हैं। बल्कि एक ही मन तीनों अवस्थाओं में परिवर्तित होता रहता है या हो जाता है। इसलिए कुछेक अवस्थाओं में एक अवस्था दूसरी अवस्था की विरोधी नहीं हो सकती है। इसलिए जब किसी के मुख से कोई असम्बद्ध प्रलाप के समान व्यर्थ और युक्ति व सहजात ज्ञान के विरूद्ध कोई बात सुन पाओ तो निर्भीक मन से उसको परित्याग करदो। एक अद्भुत किम्भूत किमाकार पहले से स्वतन्त्र कोई अन्य विषय नहीं लाता है। पुरातन महापुरुष

कहते हैं . कि हम आज नाश करने को नही आये हैं, बल्कि जो पहले से ही अपूर्ण दशा में वर्तमान है, उसको पूर्ण कर देने को आये हैं। इस प्रकार से जब कोई व्यक्ति यथार्थ में भगवद् वसिष्ठ होता है, वह भी पहले युक्ति और विचार द्वारा जितना सत्य लाभ किया जा सकता है , उसी को अधिक सम्पूर्ण कर देता है और वह सर्वथा युक्ति युक्त होता है। जब वह युक्ति विरोधी हो, तब ही जान लेना चाहिये कि वह उसका परमार्थ विकास नहीं हुआ। बल्कि भांड़पना है।

समाधि अवस्था प्राप्त करने में प्रत्येक मनुष्य का समान अधिकार है. इसलिये संयम साधन विधि आगे चल कर 'आत्मा संयम' साधनाध्याय में सविस्तार लिखेंगे।



साधना और अभ्यास

अपनी शक्ति को यदि हम लोग काम में लावें तो तब ही वह परिरक्षित रह सकती है। चलने की शक्ति चलने से, दौड़ने की शक्ति दौड़ने से बढ़ती है। तुम किसी पाठ को नित्य आवृत्ति करो, तो देखोगे कि उसमें तुमको कितना ज्ञान प्राप्त हुआ। यदि तुम सुन्दर लिखना चाहते हो तो बार २ लिखना होगा। यदि दस दिन तक बिछौने में पड़े रहने के बाद एक दिन चलने की तैयारी करो तो देखोगे कि तुम्हारे पांव कितने कमजोर हो गये हैं। तुम किसी विषय में दक्षता प्राप्त करना चाहते हो, तो उसे व्यवहार में लाओ और यदि किसी विषय में निवृत्त होना चाहते हो तो एक बारगी उसे छोड़ दो। यही बात अध्यात्म के विषय में भी है।

आठ प्रहरों में अगर एक घड़ी भी अध्यात्म के विषय में किसी एक वस्तु पर ध्यान जमाने का अभ्यास करो तो एक दिन वह फलफूल देने वाला एक बड़े वृक्ष के आकार में देखोगे तो भी देते जाओ। सारे पदार्थ अभ्यास से प्राप्त हो सकते हैं। अभ्यास के बल पर कोई आकाश में गति प्राप्त कर सकते हैं, कोई सर्प व्याघ्र को आधीन कर लेते हैं, कोई विष को आहार बना लेते हैं, कोई समुद्र में मार्ग निकाल लेते हैं। अध्यात्म के वैज्ञानिकों को कोई दुष्प्राप्य नहीं है।

इसमें सुसिद्ध किस प्रकार हुआ जाता है। संध्या विज्ञान से आत्मबल प्राप्त करूंगा, ईश्वर के निकट शुद्ध रहूंगा, अपनी निर्मल आत्मा के पास निर्मल रहूंगा । क्या मृत क्या जीवित सब ही प्रकार के उच्च महात्माओं का सहवास करूंगा । ऐसा होने पर यथेष्ट लाभ हो सकता है।

इन उपायों का अवलम्बन कर तुम अभ्यास को दृढ़ कर सकोगे । परन्तु पहले ही से जितना कर सको प्रयत्न वान हो जाओ। अर्थात अनन्त ही में वास्तविक सुख है। विश्व की क्रियायें देश काल अथवा ऋत सत्य की सीमाओं से परिवेष्ठित रहती हैं। इस कारण ही—'अन्त्यतिष्ठत् दशाङ्गुलम्' इस श्रुतिद्वारा वेद का स्पष्ट संकेत है कि--प्रकृति जगत मे जो शांति और शक्ति है, जिसका एक नाम शेष है और दूसरा नाम अच्छेष्ठित है, भारतीय ऋषियों ने ही उस गुप्त तत्व की प्राप्ति के हेतु 'संध्याविज्ञान' रूपी अमोघ साधन निर्माण किया, जिसके अनुष्ठान से अनन्त सुख की प्राप्ति की। जिसको वाणी द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

इस विज्ञान साधना को करते हुए अत्यन्त सावधानी के साथ प्रतिदिन इन बातों का भलीभांति चिन्तन करते रहना चाहिये।

१ मैं अपनी जीवन यात्राको किस अवस्था में ले जा रहा हूं।

२ जीवन की जिस परिस्थिति में मैं साधन कर रहा हूं, उसमें सहानुभूति रखने वाले मेरे कितने समान मनस्क सुहृदय सहायक हैं।

३ जिस स्थान पर मैं अपनी साधना सफलतापूर्वक सिद्ध करना चाहता हूं, वह कहां तक मेरी कार्य शैली के अनुकूल है। क्योंकि स्थान जनित प्रतिकूल वातावरण साधक के लिये अनेक कठिनाइयां उत्पन्न करती हैं।

४ साधक का यह भी अत्यन्त आवश्यक कर्तव्य है, कि वह निरन्तर निरीक्षण करता रहे कि मेरी वैयक्तिक सामर्थ्य में कितना संचय और कितना व्यय होता रहता है। इस परीक्षण मात्र से साधक का शक्ति की ओर विशेषतया दत्त चित्त रहना पड़ता है। अन्त में अपने को अदम्य उत्साह शक्ति का पुञ्ज अनुभव करता हुआ, अर्थात आय व्यय का निरन्तर नियम पूर्वक निरीक्षण करना किसी भी व्यापार में सफलता प्राप्त का मूल मन्त्र है।

५ संध्या साधना अर्थ हीन है, यदि साधक अपने वैयक्तिक स्वरूप से नितान्त अनभिज्ञ है। आत्म चिन्तन आत्मानुभव की पूर्व पीठिका है। दर्शन, श्रवण, मनन और निधिध्यासना भी साधना चतुष्टय द्वारा आत्मस्वरूप पूर्ण रूप से जाना जाता है।

६ साधक को आत्मवित् होने पर अपनी शक्ति का भी पूर्ण अनुभव आवश्यक है, कि जिसके सद्प्रयोग से अपने ही नहीं, अपितु विशेष ब्रह्माण्ड व्यापी शक्ति के साथ उचित सहयोग कर सके।

७ उच्चतर जीवन में प्रवेश करने के लिये दासत्व से निकलकर स्वामित्व को प्राप्त करने का एक मात्र उपाय यह है कि सर्व प्रकार की निर्बलता और असफलता को निकाल कर ईश्वर के अस्तित्व से विमुख न हो सकना, इस का नाम ही विज्ञान साधना है।

८ श्रद्धा और संकल्प जीवन की नित्य प्रेरित शक्तियां हैं। संकल्प में कोई भी कार्य्य ऐसा नहीं जो अटल विश्वास और दृढ़ संकल्प से पूर्ण न होता हो।

९ संध्या साधना के लिये सबसे उत्तम मनोतीत शैली सनातन विधि तथा आर्य्यसामाजिक दोनों रीतियां पातंजलि योग शास्त्र से मिलती हैं, क्योंकि योगियों के लिये विडम्बना की आवश्यकता नहीं। तथापि आर्य्यसामाजिक संध्या इस लेखक ने उत्तम पाई है।

१० सायंप्रातः एकान्त निर्जन स्थान ही संध्या साधना के लिये उपयुक्त होता है।

सनातन धर्म विधि से सन्ध्या के मूल मन्त्र

—:०:—

इस मन्त्र से शरीर में भस्म लेपन करे।

ॐ अग्निरिति भस्म जलमिति भस्म स्थल मिति भस्म व्योमिति भस्म, सर्वं ॐ हवा इदं भस्मा मन एतानि चक्षुषिभस्मानि।

इस मन्त्र से भस्म का अभिमन्त्रण करे।

ॐ त्र्यम्बकम् यजामहे सुगन्धिम्पुष्टि वर्धनम्। उर्वारुकमिवबन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्

शुद्धासन से बैठकर नीचे लिखे मन्त्र से रेचक, पूरक और कुम्भक भेद से प्राणायाम करे। (प्राण संयम में देखो)

ॐ भूः। ॐ भुवः। ॐ स्वः। ॐ महः। ॐ जनः ॐ तपः। ॐ सत्यम्। ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्

ॐ आपो ज्योति रसोऽमृतंब्रह्म भूःभुर्वः स्वरोम् ।

नीचे लिखे मन्त्रों से प्रातः मध्यान्ह, और सायं आचमन करे

ॐ सूर्यश्चमेति ब्रह्माऋषि प्रकृति श्छन्दः सूर्योदेवता अपामुप
स्पर्शने विनयोग ।

ॐ सूर्यश्चमा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृत्येभ्यः पापेभ्यो रक्षंताम् । यद्रात्र्या पाप मकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्याँ पद्भ्या मुदरेण शिश्ना रात्रि स्तदवलुम्पतु यत्किञ्चिद्दुरितं मयि इद मह मापोऽमृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा ।

ॐ आपः पुनन्त्विति विष्णु ऋषि रनुष्टुप श्छन्दः आपोदेवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः

ॐ आपः पुनातु पृथवी पृथ्वि पूता पुनातु माम् पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्म पूतापुनातु माम

यदुच्छिष्टमभोज्यञ्च यद्वा दुश्चरितं मम सर्वं पुनन्तुमामापोऽमृताञ्च प्रति ॐ स्वाहा

ॐ अग्निश्चमेति रुद्रोऋषिः प्रकृति श्छन्दोऽग्निर्देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः ।

ॐ अग्निश्चमा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्यु-कृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्तां यदन्हा पाप मकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पदभ्यामुदरेण शिश्ना अहस्त दवलुम्पतु यत् किञ्चिद्दुरितं मयिइद महमापोऽमृत योनौ सत्ये ज्योतिषि जुहामि स्वाहा ।

इस मन्त्र से अङ्ग स्पश करे ।

ॐ विष्णुः २ । ॐ वाक् वाक ' ॐ प्राणः प्राणः ॐ चक्षुः चक्षुः । ॐ श्रोत्रं श्रोत्रं । ॐ नाभिः ॐ हृदयम् । ॐ कण्ठः । ॐ शिरः । ॐ बाहुभ्याम् यशोबलम । ॐ करतल करपृष्ठे ।

नीचे लिखे मन्त्र से मार्जन करे।

ॐ आपोहिष्ठा मयोभुवः। ओ३म् तानऊर्जेदधातनः। ॐ महेरणायेचक्षसे। ओ३म् योवः शिवतमोरसः। ओ३म् तस्यभाजयतेहनः। ओ३म् उशतीरिव मातरः। ओ३म् तस्माऽअरंगमामवः। ओ३म् यस्य क्षयाय जिन्वथः। ओ३म् आपोजनयथाचनः।

आखिरी मन्त्र से जल भूमि में डाल देवे।

अघमर्षण मन्त्राः

ॐ ऋतञ्चेति तृचस्यघमर्षण ऋषि रनुष्टुप छन्दः भाववृतो देवतं अश्वमेधावभृते विनियोगः।

ॐ ऋतंच सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः॥
समुद्रादर्णवा दधि सम्वत्सरो अजायतः।
आपो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतोवशी॥
सूर्याचन्द्रमसोधाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवञ्च पृथ्वीं चान्तरिक्ष मथोस्वः॥

ऊपर के मन्त्र से जल हाथ में लेकर नासिका से सूंघ कर अपने बाँई तरफ छोड़ देवे।

इस मन्त्र से सूर्य को अर्घ दान देवे ।

ओंकारस्य ब्रह्मा ऋषि गायत्री छन्दः परमात्मा देवता महा व्याहृतिनां प्रजापति ऋषिः । गायत्र्युष्णि गनुष्टप च्छन्दान्सिअग्नि वाय्वा दित्या देवता गायत्र्यास्य विश्वामित्र ऋषि गायत्री छन्दः सविता देवता सर्वेषाम् अर्घ्य दाने विनियोगः ।

इस विनियोग को छोड़ कर गायत्री मन्त्र से ३ बार सूर्य को अर्घ दान करे ।

सूर्योपस्थानम्

ॐ उद्वयमिति मन्त्रस्य प्रस्कण्व ऋषि रनुष्टप छन्दः सूर्यो देवता । ॐ उदुत्य मित्यस्य प्रस्कण्व ऋषि गायत्री छन्दः सूर्योदेवता । ॐ चित्रं देवानामित्यस्य कुत्साङ्गि रसः ऋषि स्त्रिष्टुप् छन्दः सूर्यो देवता । ॐ तच्चक्षुरित्यस्य दध्यङ्ङथर्वण ऋषि उष्णिक छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः ।

ॐ उद्वयं तमसस्परिस्वः पश्यन्त उत्तरं देवं देवत्रा सूर्यमगन्मज्योतिरुत्तमम् ।

ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्। ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुण स्याग्नेः। आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्ष थ्ठं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शत थ्ठं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्।

इसके बाद अङ्ग न्यास करना।

ॐ हृदयाय नमः ॐ भूः शिर से स्वाहा ॐ भुवः शिखायैवषट् ॐ स्वः कवचायहुम्। ॐ भूः भुवः स्वः नेत्राभ्यांवषट्। ओ३म् अस्त्राय फट्

गायत्री आवहनम्

गायत्रीं अक्षरां बाला साक्षिसूत्र कमण्डलम।
रक्त वस्त्रांचतुर्हस्तां हंस वाहन संस्थिताम्॥
ऋगवेदेचकृतांत्सँगा सर्व देव नमस्कृताम।
ब्रह्माणि ब्रह्म दैवत्यां ब्रह्म लोक निवासिनीम्॥

आवाहयामया देवी मायन्ति सूर्य मण्डलाम ॥
आगच्छ वरदे देवी त्र्यक्षरे ब्रह्म वादिनी ।
गायत्री छन्दसां मात ब्रह्मयोनि नमोस्तुते ॥

ॐ तेजोसीत्यस्य परमेष्ठि प्रजापति ऋषिर्यजुछन्दः आज्र्य देवता गायत्या बाहने विनियोगः

ॐ तेजोसि शुक्रमस्य मृतमसि धामनामासि प्रियं देवना मना धृष्टन्देव यजनमसि ।

ॐ गायत्रिय सीति मन्त्रस्य विमल ऋषि पँङ्क्ति श्छन्द परमात्मा देवता गायत्र्यु पस्थाने विनियोगः ।

ॐ गायत्र्य स्येक पदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्दय पदसि नहि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परो-रजसेऽसावदोमापापत् ।

ॐ कारस्य ब्रह्माऋषि गायत्री छन्दः परमात्मा देवताः महाव्याहृतीनां प्रजापतिऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्ठभ-श्चछन्दसां स्याग्नि वायव्यादित्या देवता गायत्र्या विश्वा-मित्र ऋषिः गायत्रो छन्दः सविता देवता सर्व पाप क्षयार्थे जपे विनियोगः ॥

गायत्री मन्त्र

ॐ भूः भुर्वः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्य भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ।

ऊपर लिखे मन्त्र को यथाशक्ति जाप करना ।

सूर्य प्रदक्षिणा

ओ३म् विश्वतश्चक्षुरित्यस्य भौवन ऋषि त्रिष्टुप् छन्दः सूर्य विश्व कर्मा देवता दक्षिणायां विनियोगः ॥

ओ३म् विश्व तश्चक्षुरुत् विश्वतोमुखो शिवतो वाहुरुत विश्व तस्पात ॥ सम्बाहुभ्यां धमत्ति सम्पन त्रैर्द्या वा भूमि जनयन देव एकः ॥

इस मन्त्र से प्रदक्षिणा करे ।

ओ३म् देवा गात्वित्यस्य मनसस्पति ऋषि विराड छन्दः वातो देवता जपे विनियोगः ।

ओ३म् देवा गातु विदोगातुँ वित्वा मिन मनसस्पत इमन्देव यज्ञ ७ᳫं स्वाहा वाते धाः ।

अनेन कर्माणि परमात्मा प्रीयत्ताम् नमम् ॥

आर्य सामाजिक रीति से सन्ध्या के मूल मन्त्र

——:०:——

गायत्री मन्त्र से शिखा बन्धन करे

नीचे लिखे मन्त्र से आचमन करे।

ओ३म् शन्नोदेवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्स्रवन्तुनः। (य० अ० ३६ मं० १२)

इन्द्रिय स्पर्श मन्त्राः

ओ३म् वाक् वाक्। ओ३म् प्राणः प्राणः। ओ३म् चक्षुः चक्षुः। ओ३म् श्रोत्रं श्रोत्रं। ओ३म् नाभिः। ओ३म् हृदयम्। ओ३म् कण्ठः। ओ३म् शिरः। ॐ बाहुभ्यां यशोबलम्। ॐ करतलकरपृष्ठेः।

मार्जन मन्त्राः

ओ३म् भूः पुनातु शिरसिः। ओ३म् भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओ३म् स्वः पुनातु कण्ठेः। ओ३म् महः पुनातु हृदये। ओ३म् जनः पुनातु नाभ्याम्। ओ३म् तपः

पुनातु पादयोः। ओ३म् सत्यँ पुनातु पुनः शिरसि। ओ३म् खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ।

प्राणायाम मन्त्रः

ओ३म् भूः। ओ३म् भुवः। ओ३म् स्वः । ओ३म् महः। ओ३म् जनः। ओ३म् तपः। ओ३म् सत्यम ।

अघमर्षण मन्त्रः

ओ३म् ऋतञ्च सत्यंञ्चाविद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्य जायत ततः समुद्रो अर्णवः। १॥
समुद्रा दर्णवा दधि सम्वत्सरोअजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्यमिपतो वशी ॥२॥
सूर्य्याचन्द्र मसौधाता यथा पूर्व मकल्पयत्।
दिवञ्च पृथिवी ञ्चान्तरिक्ष मथोस्वः ॥३॥
ऋ० १० सू० ११,९० मं० ३

आचमन मन्त्र से दूसरी वार आचमन।

मनसा परिक्रमा मन्त्राः

ओ३म् प्राचोदिगग्नि रधिपति रसितो रक्षिता •दित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो

नम इषुभ्यो नम येभ्यो अस्तु । योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तभो जम्भे दध्मः ॥

ओ३म् दक्षिणादि गिन्द्रोऽधिपति स्तिरश्चि राजी रक्षिता पितर इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम येभ्यो अस्तु । यो०

ओ३म् उदीची दिक् सोमोऽधिपति स्वजो रक्षिता शनिरिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नमः इषुभ्यो नम येभ्यो अस्तु । यो०

ओ३म् प्रतीची दिक् वरुणोऽधिपति पृदाकू रक्षिता-न्नमिषवः । तेभ्योनमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नम इषुभ्योनम येभ्यो अस्तु । यो०

ओ३म् ध्रुवादिग्विष्णु रधिपतिः कल्माषः ग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम येभ्यो अस्तु । यो०

ओ३म् ऊर्ध्वा दिग्वृहस्पति श्वित्रो रक्षिता वर्ष मिषव तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो, रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम तेभ्यो अस्तु । यो०

उपस्थान मन्त्राः ।

ओ३म् उद्वयं तमसस्परिस्वः पश्यन्त उत्तरम् देवं देवत्रा सूर्य्य मगन्मा ज्योति रुत्तमम् । य०अ० ३५ म०१४

ओ३म् उदुत्य जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्यम् । ऋ० मं १ सू० ५ मू० १

ओ३म् चित्रं देवाना मुदगाद नीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याऽग्नेः आप्राद्यावा पृथिवी अन्तरिक्ष ७ं सूर्य आत्मा जगत स्तस्थुषश्चस्वाहा । य० अ० ७ मं० ४२

ॐ तच्चक्षुर्देवहितँ पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं ७ं शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शत मदीना स्यामशरदः शतं भूरश्च शरदः शतात् य० ३६ मं० २४

तीसरी बार आचमन ।

गुरुमंत्र

ॐ भूः भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यँ भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् । य० अ० ३६ म०३

नमस्कार मन्त्र

ॐ नमः शंभवायच मयो भवाय च नमः शंकराय च मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवत्तराय च । य०अ०१६मं४१

ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

संध्या मंदिर

आप में जो सामर्थ्यवान हों, वह साधना के लिये एक स्वतंत्र (जुदा) कमरा रक्खें तो अच्छा है। इस कमरे में सोना न चाहिये। स्नान न करके तथा शरीर व मन को पवित्र किये बिना इस स्थान पर न जाना चाहिये। क्योंकि यह स्थान सत्व गुण से परिवेष्ठित रहता है। इस कमरे को सदा ही सुगन्धित ताजे फूल और उच्च आदर्श पुरुषों के चित्रों से सजाये रखना चाहिये। उस देव चित्रों को कमरे में लगाना चाहिये। जिनके सदृश तुम बनने की उत्कंठ इच्छा और तैयारी कर रहे हो। जिससे उस देव आदर्श गुण साधन में बड़ी तीव्र गति से प्रवेश कर सकें। साधक अनुभव द्वारा यह साक्षात् कर रहा है कि मेरी जीवनादर्श की पौड़िया दिन प्रतिदिन उन्नता को प्राप्त हो रही है। सायं, प्रातः वहां पर सुगन्धित द्रव्य जलाना चाहिये। इस कमरे में किसी प्रकार का झगड़ा फिसाद क्रोध व अपवित्र चिन्ता (बुरे विचार) न होने पावें। साधक के साथ जिनके विचार व प्रकृति मिलती हो, केवल उन्हीं को आवश्यकता पड़ने पर आने देना चाहिये। इस प्रकार करने पर शीघ्र ही वह कमरा सत्वगुण (शान्त भाव) से परि पूर्ण हो जायगा। यहां

तक कि जब किसी प्रकार का दुःख व आशंका मिटकर के आने पर मन चंचल हो, उस समय उस कमरे में प्रवेश करते ही दुःख आशंका मिट कर मन शान्त भाव धारण करेगा। उपसना के लिये मन्दिर गिरजा बनवाने का यही उद्देश था और अब भी कोई २ स्थान ऐसे ही देखने में आते हैं। परन्तु अधिकांश लोग इस उद्देश को कतई भूल गये। आसन में प्रवेश करते ही अपने चारों तरफ पवित्र कम्पन (Vebration) बनाये रखने के लिये यह स्थान पवित्रता की ज्योति से परिपूर्ण हो जाता है। उच्चतर सन्ध्या विज्ञान साधना के लिये अगर कोई छः महीने या एक वर्ष निर्जन बन नदियों का किनारा, पहाड़ो गुफाओं में रहकर साधना कर सकें तो शेष जीवन गृहस्थ रहते हुये किस प्रकार सुखो जीवन व्यतीत कर सकता है। उसको अनुभव में लाकर ही देख सकते हैं। क्योंकि ईश्वर प्राप्ति के लिये यह स्थान अत्यन्त उपयोगी साबित हुये हैं।

इस प्रकार स्वतंत्र कमरे की व्यवस्था न कर सकने पर र भीते के अनुसार निर्जन स्थान में बैठकर ही साधना कर सकते हैं।

साधना काल

प्रत्येक दिन दो बार साधक को अभ्यास करना चाहिये। इस अभ्यास को करने के लिये प्रातः और सायंकाल का समय

सबसे अच्छा होता है। जब रात्रि का अन्धकार हट कर दिन का प्रकाश हो रहा हो, और सायंकाल को जब सूर्य का प्रकाश छिप कर अन्धकार हो रहा हो, इन दोनों समय ही प्रकृति और समयों की अपेक्षा शांति के रूप में विराजमान रहती है। मन को स्थिर करने के लिये ये दोनों समय ही विशेष उपयुक्त होते हैं। क्योंकि इन दोनों समयों में साधना करने से प्रकृति से हमें बहुत कुछ सहायता मिल सकती है, इसलिये इन दोनों समयों में साधना करना ही शास्त्रकारों ने आवश्यकीय बतलाया है। साधना समाप्त न होने तक भजन न किया जाय। ऐसा नियम स्थिर कर लेना चाहिये। इस प्रकार के नियम में बन्ध हो जाने से क्षुधा का प्रबल वेग ही तुम्हारे आलस्य का नाश कर देगा। साधन समाप्त न होने तक किसी प्रकार का खाद्य पदार्थ न खाया जाय। भारत में निष्ठावान गृहस्थ के बालकों को बचपन से ही वह शिक्षा मिलती है, कालान्तर में यह बात उनके लिये स्वाभाविक हो जाती है। (लेकिन वर्तमान काल में पश्चिमी सभ्यता ने भारत पर अपना प्रभाव डालकर भारतीय सभ्यता को तिलांजलि दे रहे हैं, विशेषकर आर्य समाजी जैन्टलमैन घर में भोजन करके फिर समाज मन्दिर में जाकर सन्ध्या अग्निहोत्रादि करते देखे गये हैं। इसलिये जब तक ये स्नान पूजा पाठ आदि नहीं कर लेते, तब तक उन्हें भूख ही नहीं लगती। इस प्रकार के नियमित समय में साधना करने से अनेक प्रकार की दुःश्चिन्ताओं और आलस्य से मनुष्य बच जाता है।

आसन

जिसमें कुछ काल तक स्थिर बैठा रहने से सुख मिले वह आसन सिद्धासन कहलाता है। आसन के अनेक भेद हैं और अनेक उपयोगिता भी हैं, परन्तु संध्या साधना में आसन का तात्पर्य यह है, कि साधक पद्मासन या सिद्धासन किसी एक में बैठे, जिससे साधना में सुख मिले ।

आसन में बैठकर साधना के लिये क्रियाशून्य सा बन जाना चाहिये। जिस से शरीर किसी प्रकार बिलकुल हिल ज़ुल न सके। चौकड़ी लगाकर बैठने को सिद्धासन कहते हैं। योनिस्थान को बामपाद के मूल से दबाकर दूसरे चरण से मेढ्र देश को आवद्धकर हृदय में टोढी को जमा कर या वैसे ही सीधा रहकर और दोनों भोंओं के मध्य में दृष्टि स्थापित करके निश्चित भाव से बैठे रहने का नाम सिद्धासन है। सिद्धासन सिद्धि प्राप्त करने के लिये एक ही उपाय है । सिद्धासन का अभ्यास करने से अति शीघ्र योग में सिद्धी प्राप्त होती है। उसकी साधना से किसी प्रकार का अनिष्ट होने की सम्भावना भी नहीं है ! इसके द्वारा बहुत जल्द योग में जी लगाने का कारण यह है कि लिङ्ग मूल में जीव तथा कुन्डिलनी शक्ति अवस्थित है। सिद्धासन के कारण वायु का पथ सरल तथा सहज गम्य हो जाता है । योगियों का कहना है, कि इससे मुक्ति का द्वार खुलकर आनन्दकारी उन्मनी समुन्नत दिशा हो जाती हैं। सभी सज्जन आसानी से सिद्धासन कर सकते है ।

पद्मासन

पद्मासन लगाने से निन्द्रा आलस्य जड़ता प्रभृति देह की ग्लानि निकल आती है, पद्मासन के प्रभाव से कुन्डलिनि जागृत हो जाती है। एवं दिव्य ज्ञान प्राप्त होता है । पद्मासन जमाकर दांत की जड़ में जीभ लगाने से बाह्यरङ्गता दूर होती है। इन आसनों के सिद्ध कर लेने पर सब प्रकार के द्वन्द छूट जाते हैं। आसन का मुख्य उद्देश्य यह है कि मेरु दन्ड की हड्डी सदा सीध में रहे, जिसमें शुपुम्णा नाड़ी विद्यमान है। जिसके भीतर क्रमश: बजिर्णी, चित्रिणी तथा ब्रह्मनाड़ी के भीतर से चक्रों को भेदती हुई ब्रह्मरन्ध्र में पहुंच जाती है। जहाँ पर परात्पर ब्रह्म में लय हो जाती है। यों कहिये कि साधक समाधिस्थ हो जाता है। अगर साधक निष्ठावान् ठीक सीधाई पर न बैठेगा तो अवश्य हानि होने की सम्भावना वनी रहेगी।

वज्रासन के लिये अपनी शक्ति अनुसार जो जिसको उपलब्ध हो सके, अथवा गीता के उपदेशानुसार जोकि न बहुत ऊंचा हो और न नीचा हो, उसपर पहिले दर्भ बिछाकर फिर मृगचर्म बिछाना चाहिये। सन्ध्या साधना का पहला अङ्ग आसन है, जिसको सविस्तार आसनाध्याय में लिख आये हैं। जो साधक आसन सिद्ध नहीं कर लेता है, वह किसी प्रकार की सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकता है। आसन सिद्ध होने पर भोजन

अल्प हो जाता है, इच्छाओं का नाश हो जाता है, कम बोलने का स्वभाव पड़ जाता है, चित्त की एकाग्रता होने लगती है, योग पर मन निश्चिल हो जाता है, शक्ति संतुलन होने लगती है, सर्दी, गर्मी की सहन शक्ति आ विराजती है।

उपर्युक्त सन्ध्या मन्दिर और आसनादि की व्यवस्था कर, सन्ध्या मन्दिर के स्थान को गोबर मिट्टी से लीप पोत कर ही आसन बिछाना चाहिये। पवित्र विचारों द्वारा संसार में पवित्र भावनाओं की लहर बहा दो। अपने मन ही मन में स्मरण करो कि संसार के जीव मात्र सुखी होवें और सब के सब ही एक दूसरे के सहायक हों और दुःखी कोई न हों।

ओ३म् सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु माकश्चिद्द दुःखभाग्भवेत्।

इस प्रकार के विचारों के स्रोत्र अपने चारों तरफ उत्तर दक्षिण, पूर्व, पश्चिम की ओर बहाकर पवित्र विचारों से स्थान परिपूर्ण कर दो। इस प्रकार के विचारों की ओर मन की शक्ति को जितना ही एकाग्र करोगे, उतना ही अधिक शांति का अनुभव देखने में आवेगा। बल्कि उस अव्यक्त तत्व को आलोक प्राप्ति के लिये यह प्रार्थना होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त सब ही तरह की प्रार्थनाओं में कुछ २ स्वार्थ दिखलाई पड़ता है।

इसके अनन्तर यह विचार करना चाहिये कि हमारा शरीर वज्र के समान दृढ़ सबल और स्वस्थ है, यह शरीर ही

हमारी मुक्ति का एक मात्र सहायक है। इसलिये शरीर को शुभ विचारों द्वारा दृढ़ बना लेना चाहिये। मन ही मन में विचारों द्वारा यह स्थिर कर लेना चाहिये कि इस शरीर द्वारा ही मैं अपने जीवनादर्श को ऊंचा उठा सकता हूं। अन्यथा कोई साधन ऐसा नहीं जो मुझे ऊंचा उठा सके। इसलिये सर्व प्रकार की मानसिक शारीरिक दुर्बलताओं को छोड़ कर सन्ध्या साधना में लगना चाहिये। तुम अपने शरीर को कह दो कि तुम पूर्ण आयु पर्यन्त शक्ति सम्पन्न हो। इस तरह से तुम में विलक्षणता अनुभव होने लगेगी और परमानन्द प्राप्त करोगे।

नोट:—सन्ध्या विज्ञान साधना से लेखक का केवल यही अभिप्राय है कि किस प्रकार प्रकृति का विश्लेषण किया जाय। क्योंकि जिस प्रकार मुसलमान नमाज पढ़ लेते हैं, उसी प्रकार आर्य जनता भी सन्ध्या पढ़ लेते हैं। जिसका कोई मूल्य नहीं। क्योंकि ऋषियों ने एक स्वर से तप करने को कहा है। तब ही तो शास्त्र झूठे हैं या सच, निर्णय हो सकेगा।

आचमन विज्ञान

ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टये आपो भवन्तु पीतये ।
शन्नो रभिः स्रवंतु न. ॥ य० अ० ३६ मन्त्र १२ ॥

अर्थ—(ॐ शन्नो देवी इत्यादि) इसका अर्थ यह है कि—आपन्न् व्याप्तौ, इस धातु से अप शब्द सिद्ध होता है, वह सदा स्त्री लिङ्ग और बहुबचनान्त रहता है। दिव धातु अर्थात् जिसका क्रीड़ा आदि अर्थ है, उससे देवी शब्द सिद्ध होता है। (देव्य आपः) सबका प्रकाशक, सबको आनन्द देने वाला और सर्व व्यापक ईश्वर (अभिष्टये) मनोवाञ्छित आनन्द के लिये और (पीतये) पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिये (नः) हमको (शं) कल्याणकारी (भवन्तु) हो, अर्थात् हमारा कल्याण हो। (ताः आपो देव्यः) वही परमेश्वर (नः) हम पर (शंयोः) सुख की (अभिस्रवन्तु) सर्वदा वृष्टि करे।

यहां आप शब्द से ईश्वर भी हो सकता है, लेकिन हमारा अभिप्राय आचमन करने से है. इसलिये आपः-जल यहां अभिप्राय है।

भावार्थ—यह शान्ति प्रदाता जल सब ओर से हमें अत्यन्त सुख कारक, अनेक प्रकार की व्याधियों का निवारक और आधिभौतिक तथा आधिदैविक उत्पातों से हमें शान्ति प्रदान करे।

इस वेद मन्त्र से पश्चिमीय विद्वान् जल चिकित्सा Hydropathy का आविष्कार करते हैं और सब प्रकार के रोगों पर केवल जल ही का आश्रय लेकर उनका निवारण करते हैं। यह वेद मन्त्र की वैज्ञानिकता नहीं तो क्या है? वेदों में कितने ही मन्त्र जल की उपयोगिता पर आये हैं। हम स्थानाभाव से उन्हें उद्धृत नहीं कर सके, लेकिन अन्य मतावलम्बियों को यह सौभाग्य प्राप्त नहीं हो सका।

क्रोध के आवेश में पिया गया ठंडा जल क्रोध को शान्त कर देता है, दुष्ट कामवासना उत्पन्न होने पर काम वासना कोसों दूर भाग जाती है, किसी प्रकार से मन की उद्विग्नता होने पर ठंडा पानी पीने से मन शान्त भाव ग्रहण करता है। यही कारण है कि बिखरे हुए मन को एकत्रित करने के लिये सन्ध्या में सर्व प्रथम आचमन करना आवश्यक होता है और जब भी मन अस्थिर होने लगे आचमन करना चाहिये। प्रत्येक शुभ कार्यारम्भ में हस्त पाद प्रक्षालन के पश्चात् आचमन और अङ्ग स्पर्श करना होता है। और देखिये पानी की उपयोगिता पर यह मन्त्र कितना उपदेश-प्रद है।

इदमापः प्रवहत यत्किञ्चिद्दुरितं मयि।

यद्वाऽहमभि दुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम। ऋ०म०अ०७म०६।

अर्थात् जो मेरे अन्दर दोष हों और दोषादिके कारण जो मैंने वैर भाव रक्खा हो, जो मैंने अनावश्यक शपथ लिया हो,

और जो असत्यता हो, उसको यह परम पावन जल भली प्रकार दूर करदे।

इस मन्त्र ने स्पष्ट कर दिया है कि क्रोध आदि तमोगुण की प्रधानता पर पिया गया ठंडा जल शांति प्रदान करता है इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये सन्ध्या साधना में सर्व प्रथम आचमन किया जाता है।

योगी लोग तो सदा ही घन्टे २ पर एक २ घूंट जल पीने का अभ्यास बना लेते हैं। इसलिये उनका मन सदा शान्त भाव धारण किये रहता है। यह अमृत मय जल सत्य, यश, बल और लक्ष्मी प्राप्त कराने में सहायक होता है। निरोग व्यक्ति को बार बार जल पीने के अभ्यास से निम्न प्रकार के लाभ अवश्यम्भावी हैं—

(१) मानसिक उद्विग्नता नहीं रहने पाती।

(२) स्वप्नदोष धातु विकार नहीं होता।

(३) कब्ज की शिकायत दूर होती है।

(४) बद्धकोष्ठता दूर होने पर जठराग्नि प्रज्वलित होती है।

(५) हृदय में जलन पेट में दर्द नहीं होता है।

(६) बार २ जल पीने से रक्त की अधिकता, मुंह पर लाली, मलमूत्र की स्वच्छता, धातु विकार आदि दोषों से मुक्त रहता है। विशेष अमृतपान नामक पुस्तक में देखिये।

इन्द्रिय स्पर्श

अर्थात्—सर्वदेश्वर कृपयेन्द्रियाणी ववन्ति तिष्ठन्त्वि त्यभिप्रायः ।

श्रुति विप्र मतिश्नाते यदास्थास्यति निश्चला ।
समाधावचलाबुद्धिस्तदायोगमवाप्स्यसि । २-५३ गीता

वर्तमान् काल के अयोगिक तथा नास्तिक वाद और अनेक प्रकार के सिद्धान्तों को सुनने से व्यग्र हुई तेरी बुद्धि जब समाधि में स्थिर होगी, तभी तू समत्व को प्राप्त कर सकेगा ।

सन्ध्या विज्ञान का आरम्भ होता है, इन्द्रिय विकास से, जैसे नाक के अग्र भाग में संयम करने से कुछ ही दिनोंमें दिव्य सुगंध अनुभव होने लगता है । इसी प्रकार नेत्रों से त्राटक करने पर अलौकिक आकर्षण और दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है । इन्द्रिय स्पर्श से अभिप्राय है, इन्द्रिय शक्तियों का विकास, इन्द्रियों से इन्द्रियातीत का अनुभव, इन्द्रिय शक्तिद्वारा अतीत प्रदेश में पहुंच कर अव्यक्त तत्व का साक्षात् होना । इसी से समझ सकते हैं कि हमारी इन्द्रियां विभिन्न वस्तुओं के सम्पर्क में न आकर अलौकिक सिद्धियों को अनुभव में लाती हुई अन्तमें अतीन्द्रियमें पहुंच कर आत्मतत्व का साक्षात्कार करती हैं । इन सिद्धियों की साधनाओं में विश्वास उत्पादन के अतिरिक्त सूक्ष्म से सूक्ष्म तत्वों की शक्ति जानने की क्षमता भी विराजती है । इन साधनों का एक मात्र

लक्ष्य स्थूल से सूक्ष्म की ओर ले जा कर अन्ततः प्रकृति पर विजय पाना है। इन सिद्धियों से हमारा काम चलता भी नहीं है। यह हमारे प्रकृत कार्य साधना में एक वैज्ञानिक रसायनिक संयोग है। हमारा लक्ष्य तो केवल आत्मा से परमात्मा तक का है। हम प्रथम इन्द्रियों के ऊपर शासन करेंगे, इनके द्वारा अतीत प्रदेश में पहुँचेंगे। यह नहीं होगा कि हम इन्द्रियों को अपने ऊपर शासन करने देंगे और यह भी न भूलना चाहिये कि इन्द्रियां हमारी हैं, न कि हम इन्द्रियों के हैं। इस प्रकार जो साधक इन्द्रियों के यथार्थ तत्व को समझ गये, वह परम पद प्राप्त कर गये।

ऋषि परम्परा से आई हुई नियमता पर प्रत्येक आर्य सन्तान यह कहने में नहीं हिचकती है कि—हमें इन्द्रिय जीत होना चाहिये। भला प्रकृति पर विजय पाना कैसे सम्भव है? सम्भव तभी हो सकता है, जब उसके यथार्थ तत्व का अनुसन्धान कर लिया जावे। इन्द्रिय स्पर्श में लिखी किसी एक विधि पर सफलता प्राप्त करने पर साधक को अनायास ही यह प्रेरणा उत्पन्न हो जाती है कि—"अगर मेरा ब्रह्मचर्य यथार्थ में सधा होता तो निश्चय ही मैं शीघ्रता से सफलता प्राप्त करता। किन्तु समय है मैं अभी इन्द्रयों को वशीभूत करूंगा। क्योंकि सब इन्द्रियां एक ही कार्य करती दिखाई देती हैं। आप किसी एक कार्य को एक इन्द्रिय को दे दो, स्वभावतः सारी इन्द्रियां उसी में एक लग्न हो कर लग जायंगी। क्रमशः समता प्राप्त होकर तुम्हें स्पष्ट आज्ञा

होगी कि—यह सुख एक प्रतीति मात्र है और प्रकृति का निघर्षण मात्र है। सन्ध्यायोग में वाक् आदि इन्द्रियों के क्रम से सध जाने पर राज योग साधना में कितनी सहायता मिलती है, वह अनुभव में ला सकते हैं। मनुष्य जीवन निराशा और आत्म ग्लानि के लिये नहीं है, किन्तु हर्ष उत्साह और शान्ति साम्राज्य के लिये है। भगवान् कृष्ण कैसा अच्छा उपदेश गीता में देते हैं कि-जो इन्द्रियों को केवल विषय वासना निमित्त ही व्यय कर देता है, वह मिथ्याचार और दम्भ का बीज बोता है और जो सन्ध्या विज्ञान द्वारा लिखे हुये साधनों को साधते हुये इन इन्द्रियों से कर्मयोग का आचरण कराता है, वही श्रेष्ठ है। ३-६,७। इन्द्रियों से अतीत केवल शुद्ध और सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ग्रहण करने में जो अनन्त आनन्द है और जिस अवस्था में स्थित हुआ सन्ध्या विज्ञानी भगवत् भक्ति से विचलित नहीं होता है। ६-२१। अब प्रश्न होता है कि इन्द्रियों पर कैसे विजय प्राप्त की जाय ? तो भगवान् वासुदेव ही उत्तर देते हैं—तथा धैर्य युक्त बुद्धि द्वारा मन को परमात्मा में स्थिर करे और परमात्मा के सिवाय और कुछ भी चिन्तन न करे। ६-२५ यथा विधि श्रोत्रादि सब इन्द्रियों को संयम द्वारा स्वाधीनता रूप अग्नि में हवन करे, अर्थात् इन्द्रियों को विषयों से हटाकर अपने वश में कर लेवे और दूसरे योगी लोग शब्दादि विषयों को परमात्मारूप अग्नि में स्वाहा कर दे।

अब पाठक समझ गये होंगे कि भगवान् वासुदेव ने किस

प्रकार अङ्गस्पर्श आदि मन्त्रों का कैसा अच्छा स्पष्ट अर्थ किया है कि—क्रम क्रम से प्रत्येक इन्द्रियाँ स्वाधीनता रूप अग्नि में तपाने से शुद्ध की जा सकती हैं और मनुष्य जन्म आनन्दमय किया जा सकता है। फिर ऊपर लिखे उपदेशों पर उपनिषद् क्या कहता है—

ॐ अप्यायन्तु ममाङ्गानि वाक् प्राणश्चक्षुः श्रोत्र मथो बल इन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषद्ध माऽहं ब्रह्म निरा कुर्यां, मामा ब्रह्म निरा करोद्ध निराकरण मस्तु निराकरण मेस्तु, तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि सन्तु ते मयिसन्तु।

मेरे सब अङ्ग हृष्ट-पुष्ट हों, मेरी वाणी, चक्षु, श्रोत्रादि सब समर्थ हों, यह सब इन्द्रियां शक्ति प्रदाता हों, मैं सब इन्द्रिय जनित ज्ञान का विनाश न करूंगा। किसी का विनाश न हो, जो सन्ध्या में धारण पोषण नियम कहे हैं, वह सब मेरे अन्दर स्थिर रहें।

इन मन्त्रों ने सन्ध्या विधि को किस प्रकार स्पष्ट कर दिया है कि—इन्द्रिय जनित ज्ञान से किसी की हानि न हो, कोई ज्ञान का विरोध न करे, सत्यज्ञान का कोई खण्डन न करे, हरएक मनुष्य इन्द्रियों से ज्ञान प्राप्त करे। वेद में भी ऐसा ही उपदेश है।

ॐ वाङ्म आसन्नसो प्राणश्चक्षुरक्ष्णोश्श्रोत्रं कर्णयोः अपलिताः केशा अशोणादन्ता बहुबाह्वोर्बलम् । ऊर्वोरोजो जंघयोर्जवः पादयोः प्रतिष्ठा अरिष्ठानि मे सर्वात्मनि भ्रष्टः । अ० का० १९ सू० ६० मं० १-२ ।

इस मन्त्र ने कैसा स्पष्ट कर दिया है कि शरीर के सब अङ्ग उपाङ्ग बलशाली बने और ओजस्विता शक्ति सम्पन्न रहे, जिससे मनुष्यत्व प्राप्त किया जा सके ।

दर्शनों की दृष्टि से भी हम अपने शरीर को पंचतत्वों से उत्पन्न हुआ पाते हैं । हम देखते हैं कि इस शरीर की प्रत्येक इन्द्रिय जिनसे कि हम प्रत्येक प्रकार का प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करते हैं, वे इन्हीं पंच भूतों से उत्पन्न हुई प्रतीत होती हैं । जिस प्रकार घट के देखने से और उसके गुणों का प्रत्यक्ष करने के बाद हम उसके उपादान कारण का शीघ्र ही ज्ञान कर लेते हैं । इस ही प्रकार हम प्रत्येक इन्द्रिय के गुण और विषयों का प्रत्यक्षानुभव करके इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि हमारी इन्द्रियें अपना २ भिन्न २ गुण और भिन्न २ विषय रखने में और वे भिन्न २ गुण प्रत्येक पँच भूतों से पृथक् २ मिलते हैं। शास्त्रों के कारण गुण पूर्वक "कार्या गुणो दृष्टः" इस सिद्धान्त से विवेचन करने पर यह बात तो निर्विवाद सिद्ध हो जाती है कि इंद्रियों का पंचभूतों से अवश्य ही सम्बन्ध है और वह सम्बन्ध जब तक इंद्रिय हैं, तब तक अवश्य ही बना रहता है । इसलिये इन सम्बन्धों में

नित्य सम्बन्ध वाला समवाय ही बन सकता है और वह सम्बन्ध कारण कार्य के सम्बन्ध से समवादी कारण रूप से ही स्वीकार किया जा सकता है। यही मुख्य कारण है कि इंद्रिय संयम द्वारा प्रत्येक तत्वों का भली प्रकार विश्लेपण कर लिया जाय। जैसे कान से शब्द आकाश, जिह्वा से रस, नेत्रों से रूप नासिका से गन्ध और त्वचासे स्पर्श। यही तेज, वायु, आकाश, शब्द और स्पर्श इन्द्रिय संयम से पंचतत्व के गुण पृथक् और प्रत्यक्ष किया जा सकता है।

वाक् विज्ञान

ॐ वाक् वाक्

हे परमात्मन ! हमें वाक् संयम की सहायता दीजिए।

इस मंत्र में मुंह एक होने पर भी वाक् २ दो बार कहा गया है, अर्थात् वाक् व्यवहार और शरीर रक्षण निमित्त रस-स्वादन। बालक जन्मते ही वाक् व्यवहार आरम्भ करता है, इसलिये कि माता मुझे दुग्ध पान कराये। तो अब प्रश्न उठता है कि वाक् व्यवहार किस प्रकार का करना चाहिए। इस पर मनु भगवान् कहते हैं—

वाच्यार्था नियताः सर्वे वाङ्मूला वाग्विनिसृताः।
(तातु यः स्तेन येद्वाचं स सर्व स्तेय किन्नरः ४-२२६)

मनुष्यों के सब व्यवहार वाणी द्वारा ही हुआ करते हैं, एक के विचार दूसरे को बतलाने के लिए वाणी (शब्द द्वारा) के सिवाय अन्य साधन नहीं। यही सब व्यवहारों का आश्रय स्थान है और वाणी का मूल श्रोत्र है, जो मनुष्य इस (वाणी) को मलिन कर डालता है अर्थात जो वाणी की प्रतारणा करता है, वह सब पूंजी की ही चोरी करता है। वाणी का व्यवहार कैसा होना चाहिए ? इस पर फिर मनु ही कहते हैं—

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥४-१३८॥

यह सनातन धर्म है कि सत्य और मधुर बोलना चाहिए, परन्तु अप्रिय सच न कहना चाहिए। फिर मनुस्मृति में लिखा है—"सत्यपूतां वदेद्वाचम" अर्थात बात ऐसी कहनी चाहिए जो सत्य से पवित्र की गई हो। अब सन्ध्या विज्ञान तो सर्व प्रथम वाक् साधना को ही लेती है। और स्थलों में भी सत्य बोलने को साक्षात् ईश्वरोपासना कहा है और देवता लोग सत्य ही की आराधना करते हैं। भगवान कृष्ण उपर्युक्त मन्त्र का अर्थ ऐसा करते हैं—

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत्।

स्वाध्यायव्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।१७-१५

वाणी कठोरता रहित हो, सत्यप्रिय और दूसरों को अमृतोपदेशक हो, सदा स्वाध्याय शील हो, यह वाणी का तप कहलाता है। अब महर्षि पतंजली जी इस वाक् संयम को कैसा करने की आज्ञा देते हैं।

सत्यं प्रतिष्ठायां क्रिया फलाऽऽश्रयत्वम्। २-३६

जब वाक् साधना का अभ्यासी सत्य के आचरण में स्थित हो जाता है, तब उसकी वाणी और साधना दोनों का आश्रय स्थान उसकी वाणी हो जाया करती है। वह जिसको जैसा कह देता है, वैसा ही हो जाता है। वह अगर किसी पापी को धर्मात्मा हो जाने को कह देगा तो अवश्य वह पापी धर्मात्मा हो जायगा। सत्यवादीगण सदा ही परहित कारक शब्दों का

प्रयोग करते हैं जिसके सुनने मात्र से श्रोता कृतकृत्य हो जाता। इस कारण सन्ध्या में सर्व प्रथम वाक् साधना की ही प्रार्थना की गई है। अब साधक को भोजन कैसा करना चाहिये ? इस पर गीता में लिखा है—

आयुः सत्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याःस्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्विकप्रियाः १७-८

आयु की वृद्धि करने वाले, आरोग्यता रखने वाले, सुख समृद्धि और प्रीति बढ़ाने वाले, रसीले स्निग्ध शरीर में व्याप्त होकर चिरकाल तक बल को स्थिर रखने वाले, ये आहार सात्विक मनुष्य के लिये प्रिय हैं।

अप्राकृतिक भोजन से जो हा हा कार इस समय संसार में हो रहा है। वह संध्या साधक के लिये असह्य है। क्योंकि 'पेट पर पड़ा चारा तो कूदने लगा विचारा'। मनुष्य के लिये इतने बड़े २ औषधालय हैं, फिर भी अप्राकृतिक भोजन वाले बुरी से बुरी दुर्दशा से मरते हैं। चोरी, डकैती आदि अमानुषी कर्तव्य भी तो एक प्रकार के रोग हैं,जो केवल अप्राकृतिक भोजन से ही प्राप्त होते हैं।

हमारा मत तो कसौटी पर घिसकर सत्यासत्य के निर्णय करने का है। कितना ही आतताई क्यों न हो, एक ही महीने सात्विक भोजन करके देखे कि उसके यह रोग कितनी शीघ्रता से पयान करते हैं। इन्हीं कारणों को लेकर सन्ध्या में सर्व

प्रथम "ॐ वाक् वाक्" आया है, कि हे परमात्मन् हमे वाक् संयम की सहायता कीजिये ।

बहुत से सज्जन पुरुष इन मंत्रों का यह अर्थ करते हैं, कि—हे परमात्मन् ! 'मुंह वाक् आदि इन्द्रियां बलशाली हों' । लेकिन सन्ध्या विज्ञान के मत में यशशाली हों, ऐसा है ।

इस में सन्देह नहीं कि मनुष्य इन्द्रिय सम्पन्न है और वह भी सत्य है कि इन्द्रियों द्वारा ये कार्य भी करते हैं । परन्तु इन इन्द्रियों से किस प्रकार काम लेना चाहिये, यह हम लोग नहीं जानते । आंख अवश्य देखती है, किन्तु किस प्रकार देखना चाहिये ? इन बातों को कितने संध्या करने वाले जानते हैं ? कुदृष्टि किसे कहते हैं ? यह बातें कितने लोग बतला सकते हैं ? मान लीजिये एक परम सुन्दरी रमणी अपने बालक को गोद में लिटाकर स्तन पान करा रही है । उसको लोग अनेक प्रकार से देख सकते हैं । यदि तुम उसके स्तन कुदृष्टि से देखोगे तो तुम्हारे मन में पाप का संचार होगा, यदि तुम अपनी इन्द्रियों से नियोग की शिक्षा द्वारा काम लोगे तो तुम उस रमणी को सुदृष्टि देखोगे, और यदि पवित्र दृष्टि से देखोगे तो तब तुम्हारे मन में धर्म का सचार होगा और वह माता, साक्षात् जगद्धात्री, जगन्माता, के रूप में दिखाई देगी । इसी रूप को सध्या में संयम कहा है ।

इन्द्रियां स्वभावतः स्वाधीन रहना चाहती हैं । उनकी

स्वाधीनता में सारा विवेक और वैराग्य बह जायगा । अतएव इन्द्रिय निग्रह आवश्यक हो जाता है। धर्म मार्ग में अर्थ संचय की आवश्यकता नहीं । जहां तेज संचय की आवश्यकता होती है, वहां राग द्वेष की निवृति ही प्रयोजनीय है।

अधिक भोजन से भी आयु का ह्रास

इतिहास इस बात की साक्षी देता है कि अधिक भोजन करने से भी मनुष्य की आयु कम हो जाती है, क्योंकि जो लोग अल्पाहारी थे, उनकी आयु अधिक हुई । कम भोजन करने या बिल्कुल न करने से श्वास क्रिया कम होने से आयु की वृद्धि होती है, इसलिये स्वल्प और सात्विक भोजन ही संध्या साधना में उपयोगी है।

वाक् साधना ।

(१) मांस, मछली, प्रत्येक प्रकार के नशे तैल प्याज मिर्च खटाई आदि संध्या साधक को अवश्य छोड़ देने चाहिये। भोजन के विषय में कुछ नियम बांध देने चाहिये ।

(२) खेचरी मुद्रा के साधन से भी जिह्वा का संयम होता है। गुरु उपदेश उपाय से जिह्वा को तालुछिद्र में प्रवेश करने से इच्छाओं का नाश होता जाता है। इसको लेखनी द्वारा नहीं बतला सकते ।

(३) वाक् संयम के लिये प्रथम मौन व्रत का अभ्यास करे, एक एक महीने या कम से कम १५ दिन का मौन व्रत कर ध्यान

वृत्ति में लीन हो जाना चाहिये। बिल्कुल प्रसन्न होकर आनन्द मय पूर्ण ज्योतिः स्वरूप पर लक्ष्य हो जाओ। मन की वृत्ति एक लक्ष्य पर स्थिर करने के लिये हृदयाकाश में एक बिन्दु प्रकाश युक्त मानसिक भावना से इस प्रकार का करो कि ईश्वरीय दिव्य शक्ति मेरी आत्मा में प्रवेश हो रही है और मैं इतना प्रभावशाली हो रहा हूं कि विश्व का आनन्द ज्ञान मेरे मस्तिष्क में प्रवेश हो रहा है। इस प्रकार अन्तःस्थ छिपी हुई शक्ति का अनुभव करता हुआ शक्ति विकास के अध्ययन में पूर्णता को प्राप्त करे।

मौनव्रत कर लेने से मनः सन्ताप और शीरीरिक व्याधियों से मन शुद्ध और निर्मल रहता है। मौन व्रत से शांति, उत्साह, गम्भीरता और आत्मबल पैदा होता है, जो सांसारिक जीवों को अप्राप्य है। मौनव्रत से यह न समझा जावे कि बोलना ही छोड़ दिया जाये, प्रत्युत् सत्य भाषण और यथार्थ बोलने को मौन व्रत कहते हैं। यदि योग साधन निमित्त ही कुछ दिन मौनावलम्बन किया जाय, तो इस में भूख की कमी होकर दुग्धाहार या फलाहार मे रह कर योग साधन में बड़ी सहायता मिलती है।

तीन चार महीने तक जिह्वा को आगे *निकाल कर दांतों से दबा देने और गायत्री का मानसिक जाप जिह्वा के अग्र मे कर लिया जाय तो आगे लिखे हुये साधनों में बड़ी सहायता मिलती है।

---

* ततः प्रातिभ श्रवण वेदना दर्शा स्वाद वार्ता जायन्ते यो० ३-२५।

प्राण साधन

ॐ प्राणः प्राणः

कैसी अच्छी शैली है, कैसी अच्छी साधना है। सन्ध्या साधना में प्रथम स्वादेन्द्रिय साधन आया है, कि जब तक स्वादेन्द्रिय न सधेगा तब तक प्राण साधन असम्भव है। क्योंकि स्वल्पाहार और व्यर्थ वाक्व्यवहार का न करना सर्व प्रथम योग के विशाल भवन निर्माण की आधार शिला है। बिना दृढ़ और स्थाई बुनियाद के कैसे सम्भव है कि इतना बड़ा महल स्थिर रह सके। इसलिये ऋषियों ने विशेष कर महामुनि पतञ्जली ने सच्चरित्रवान् बनने के लिये विशेष जोर दिया है, जिसका आशय एक मात्र मुंह को क़ाबू करना है। जब स्वादेन्द्रिय वश में होती है, तब सारे साधन सुगम होजाते हैं और प्राणों पर विजय प्राप्त की जाती है, तो आत्मानुभूति भी हो जाती है। सन्ध्या उपासना का एक मात्र उद्देश्य है कि अलौकिक शक्तियों का प्रत्यक्षानुभव प्राप्त करना। इस लिये प्राण शक्ति की भिन्न क्रियाओं के विषय में आलोचना करेंगे।

यह हम पिछले प्रकरणों में अच्छी तरह समझ आये हैं कि सन्ध्या साधकों के मत में सन्ध्या साधना का सब से पहिला उद्देश्य ये होता है कि फुप्फुस की गति को नियन्त्रित करना है। यह हमारा मन जो एक दम बाहरी विषयों की ओर आ पड़ता है, इस से वह भीतरी सूक्ष्मानुसूक्ष्म गतियों को अनुभव नहीं करने पाता है। जब हम आभ्यन्तर गतियों को अनुभव करनेमें समर्थ हो सकेंगे, तबही हम उसको जय करनेमें समर्थ हो सकेंगे।

यह स्नावीय शक्ति प्रभाव ही जीवनी शक्ति देता है, परन्तु हम उसको अनुभव नहीं करने पाते। उपर्युक्त मन्त्र का कहना है, कि इसको अनुभव करने की शक्ति मेरे अनुष्ठान हैं और इच्छा होने पर मुझ में पूर्ण विश्वास और साधना करने से ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इसके लिये श्वास प्रश्वास की गति से आरम्भ करके प्राण की इन सम्पूर्ण विभिन्न गतियों को अपने वश में करना होगा। कुछ समय तक इसको कर लेने से हम शरीर के भीतर पहुँच कर सूक्ष्म से सूक्ष्म से गतियों को अपने ज्ञान में ला सकते हैं।

आसन और वागिन्द्रिय सिद्ध होने पर सर्व प्रथम प्राणायाम साधना में नाड़ी शुद्धि करनी होती है, तब ही हम प्राणायाम करने में समर्थ हो सकते हैं।

अँगूठे से नाक के दहने नथुने को रोक कर बांयें नथुने से यथा शक्ति वायु को भीतर खींचना चाहिये, फिर बीच में जरा भी विलम्ब न कर बांया नथुना बंद करके दहिने नथुने से वायु को बाहर छोड़ना चाहिये। फिर दूसरी बार दाहिने नथुने से वायु भीतर खींच कर और बायें नथुने से बाहर छोड़दें। दिन रात में चार बार अर्थात् प्रातः दो प्रहर, तीसरे प्रहर और सायंकाल इन चार समयों में ऊपर लिखी विधि से एक पक्ष या एक महीने में नाड़ी शुद्धि हो जाती है तब वह प्राणायाम का अधिकारी हो जाता है। नाड़ी शुद्धि से अभिप्राय इच्छा होने पर स्वर को तत्क्षण बदल देना है।

प्राणायाम विधि

अब प्राण के जान सकने की विधि क्रमशः नीचे वर्णन की जाती है। प्रणायाम करने के लिये साधक को आसन विज्ञान में लिखी विधि से समतल भूमि में आसन बिछा कर बैठना चाहिये। यद्यपि स्नायु गुच्छ मेरूदण्ड से संयुक्त नहीं रहते। टेढ़ मेढ़ होकर बैठने से मेरू दण्ड के बीच में अवस्थित स्नायुगुच्छों की क्रिया में कुछ विशृङ्खल (अनियमिता) आ जाती है। इसलिये जिस तरह से वह नियमित रह सके, उस विधि से बैठना चाहिये। टेढ़ा बैठ कर ध्यान करने की चेष्टा करने से अपनी ही हानि होती है। शरीर के तीन भाग हैं। जैसे छाती, गर्दन और मस्तिष्क इनको निरन्तर एक सीध में रखना चाहिये, जिससे देख पाओगे कि इस तरह बैठने का अभ्यास कुछ दिन तक करते रहने से थोड़े समय में ही श्वास प्रश्वास की गति के समान यह बात स्वाभाविक हो जायगी। इसके अनन्तर स्नायुओं को अपनी इच्छा के आधीन करना चाहिये।

पहले ही बता चुके हैं, कि जो स्नायु केन्द्र श्वास प्रश्वास की गति को नियमित करता है और अन्य स्नायु केन्द्रों को नियन्त्रित करता है, इसके लिये श्वास ग्रहण और प्रश्वास त्याग क्रमबद्ध करना चाहिये। साधारणतया हम जिस तरह श्वास लेते हैं और प्रश्वास छोड़ते हैं, वह नियमित श्वास

प्रश्वास के योग्य हो ही नहीं सकता। इस पर भी स्त्री पुरुषों के श्वास प्रश्वास में कुछ भेद है।

स्वर शुद्धि साधन विधि

प्राणायाम साधन की सबसे पहली क्रिया यह है कि पहले भीतर फुप्फुसों में कुछ निश्चित प्रणाली में श्वास को खींचो और निश्चित प्रणाली में श्वास को छोड़ो। इस प्रकार कई बार करने से सारा शरीर समान स्थिति में आ जायगा कुछ दिन इसका अभ्यास करने के अनन्तर इस श्वास प्रश्वास लेने और छोड़ने के समय 'ॐ' अथवा गायत्री मन्‌ का मनही मन मानसिक भावना से उच्चारण करना चाहिये और विचार करना चाहिये कि यह शब्द श्वास के सा स्तर २ बाहर आ रहा है और भीतर पहुँच रहा है इस तरह करते रहने से ही देखोगे कि क्रमशः सारा शरी ही साम्यभाव धारण कर रहा है। इस प्रकार की अवस्थ प्राप्त होने पर आप समझ सकेंगे, कि आराम क्या वस्‌ है। वास्तव में इस विश्राम के साथ तुलना करने पर निद्र को विश्राम नहीं कहा जा सकता है। जब आपको ऊप बताये अनुसार विश्राम सुख प्राप्त होना सुलभ हो जायग तब आप को ज्ञात होगा कि यथार्थ में कभी आपको विश्रा करने को मिला ही नहीं। भारत के गुणीगण प्रणायाम समय संख्या निश्चित करने के लिये १, २, ३, ४, इस प्रक

को क्रमबद्ध संख्या से गिनती न करते हुए कुछ साङ्केतिक शब्दों का व्यवहार करते हैं। वह साङ्केतिक शब्द 'ॐ' अथवा गायत्री मन्त्र का व्यवहार करने के लिये बतलाया गया है।

इस साधना का सबसे पहला फल यह देखोगे कि आप के मुखारविन्द की शोभा परिवर्तित हो रही है, मुख के ऊपर शुष्कता और कठोरता प्रकाशक जो रेखायें थीं, वह सब मिट रही हैं। उस समय आपका मन शान्ति में परिपूर्ण हो जायगा। दूसरे में आपका स्वर बहुत सुन्दर और कोमल हो जायगा। हमने एक भी ऐसा संध्या साधक नहीं देखा जिसका स्वर कठोर हो। कुछ समय तक निरन्तर अभ्यास करने से यह सब लक्षण प्रगट होते हैं। इस प्राणायाम की प्रथम क्रिया को कुछ दिन तक नियमित रूप से साधन करने के अनन्तर प्राणायाम की एक ऊँची साधन प्रणाली का अवलम्बन करना होगा।

नाड़ी शुद्धि साधन विधि

यह पहले ही बता आये हैं कि मेरु मज्जा के बांम भाग में 'ईड़ा' और दक्षिण भाग में 'पिंगला' नाम की दो नाड़ी हैं और वे नाक के बांये और दहने नथुने से सम्बन्धित रहती हैं। नाड़ी शुद्धि से यहां पर इन दोनों क्रियाओं को

ही निश्चित करना है। इसके लिये 'ईड़ा' अर्थात् बायें नथुने से धीरे २ श्वास लेकर फुप्फुसों को वायु से पूर्ण करदो और इसके साथ ही स्नायु प्रवाह के उपर मन को स्थिर कर दो और मानसिक भावना द्वारा यह अनुभव करो कि आप इस विभिन्न स्नायु को ईड़ा नाड़ी के बीच में से संचारण कर कुण्डलिनी शक्ति के आधार स्थान मूलाधार में स्थित त्रिकोणाकार के पद्म में ऊपर खूब जोर से आघात कर रहे हैं। इसके पश्चात इस स्नायु प्रवाह को उस समय के लिये उस स्थान में स्थिर करो फिर इसके बाद सब स्नायु सम्बन्धी शक्ति प्रवाह को श्वास के साथ दूसरी ओर को खींचो। फिर दाहने नथुने से वायु को धीरे धीरे बाहर छोड़ दो। इसका इस तरह से अभ्यास करना पहिले पहिले कठिन मालूम होगा इसलिये इसका सब से पहला और सरल उपाय यह है कि :—

पहले अंगूठे से दहिने नथुनेको बन्द करके बाये नथुने द्वारा धीरे २ श्वास भीतर खींच कर फेफड़ों का परिपूर्ण कर दो मन ही मन यह विचार करो कि आप स्नायु द्वारा प्राण प्रवाह को नीचे की तरफ पहुँचा रहे हैं और सुषुमण के मूल भागों में उससे आघात कर रहे हैं। इसके बाद अंगूठे को दहने नथुने से हटा कर वायु को बाहर छोड़ दो। फिर पुनर्वार बायें नथुने को तर्जनी द्वारा बन्द करके दहिने नथुने से धीरे धीरे

फुप्फस में वायु को पहुंचा दो। अन्त में बायें नथुने को खोल कर वायु को बाहर छोड़ दो। इसका अभ्यास पहिले पहल चार सेकण्ड से आरम्भ कर क्रमशः समय को बढाते रहना ही अच्छा है यहां तक कि एक २ मिनट क्रमशः खींचना और छोड़ने में लगा सको। चार सेकण्ड तक वायु को फुप्फुस में पूर्ण कर दो, सोलह सेकण्ड तक वायु बन्द रख दो और ८ सेकण्ड में वायु को छोड़ दो, इसको एक प्राणायाम कहते हैं। परन्तु उस समय मूलाधार में स्थित त्रिकोणाकार के ऊपर मन स्थिर करने को न भूलना चाहिये। क्योंकि इस कल्पना से सहज में आप के ध्यान में बहुत सुविधा होगी।

वायु निरोध साधन विधि

यह प्राणायाम की तीसरी विधि है। इसकी साधना करने के लिये श्वास धीरे २ भीतर खींचना चाहिये। फिर इसमें जरा भी विलम्ब न करके वायु को बाहर रेचन करके श्वास को कुछ क्षण के लिये बाहर ही रोक रखना होता है। इसमें श्वास भीतर खींचने बाहर छोड़ने और बाहर ही रोक रखने का समय ऊपर बताये हुये समान समझना चाहिये। पहले नाड़ी शुद्धि में बताये हुये प्राणायाम से इसका भेद यह है कि पहले में श्वास को रोक रखना होता है। यह दूसरे प्रकार का प्राणायाम पहले बताये हुये प्राणायामों में

श्वास को भीतर रोक रखना होता है, उसको क्रमसे ही बढ़ाते हुये अभ्यास करना चाहिये। प्रातः और सायंकाल को चार प्राणायाम से बढ़ाते हुए अपनी शक्ति अनुसार आधे घन्टे तक लेजा सकते हैं। यह जो तीसरा प्राणायाम है सहज साध्य होने से क्रम से बढ़ा कर १ घंटे तक ले जा सकते हैं। अभ्यास आरम्भ करने से पहले देख पाओगे कि आप को उत्साह आनन्द और प्राण शक्ति प्राप्त हो रही है।

प्राणायाम की जो क्रियायें ऊपर वर्णन की गई हैं, अर्थात (१) स्वरशुद्धि विधि, (२) नाड़ी शुद्धि विधि और (३) वायुनिरोध साधन विधि। इनमें पहली और तीसरी विधि कठिन नहीं हैं और अनिष्ट होने की सम्भावना भी नहीं है। लेकिन दूसरी विधि को जब तक अभ्यास सध नहीं जाता कठिन अवश्य है। इस प्रकार करते २ सम्भवतः किसी एक दिन अधिक साधन करने से तुम्हारी कुण्डलिनी शक्ति जागरित हो जायगी कुण्डलिनी शक्ति के चैतन्य होने से साधक देख पावेंगे कि उनके सामने सारी प्रकृति मानो एक नया रूप धारण कर रही है। उसके लिये ज्ञान का दरवाज़ा खुल जाता है। उस समय आप का ज्ञान ही अनन्त विशिष्ट पुस्तक का काम करेगा। सन्ध्या विज्ञान का कहना है कि साधारण जीवों की सुषुम्णा पोली न रह कर ठोस रहती है, लेकिन सन्ध्या साधक की प्राण साधन द्वारा खुल जाती है।

संध्या साधक की शुषुम्णा खुल जाती है, इतना ही नहीं बल्कि उस सुषुम्णा की स्नावीय शक्ति प्रवाह चलने लगती है। उस समय बुद्धि के परे प्रदेश में चला जाता है, जहां बुद्धि और तर्क की कोई सीमा नहीं। यह साधना के लिये संकेत मात्र "ॐ प्राण" शब्द आया है।

केवल कुम्भक चतुर्थ प्राणायाम

इन तीनों प्राणायामों के साधन द्वारा जब इतना अभ्यास परिपक्व हो जाय, तब—"केवल कुम्भक" अभ्यास आरम्भ करना चाहिये। शास्त्रकारों ने इसे चतुर्थ प्राणायाम कहा है।

रेचकं पूरकं त्यक्त्वा सुखं यद्वायुधारणम् ।
प्राणायामोऽयमित्युक्तः सर्वे केवल कुम्भकः ॥

यह केवल कुम्भक प्राणायाम बहुत कठिन है, इसको प्रत्येक मनुष्य नहीं कर सकता है, किन्तु जो प्राणायाम करते २ इतना प्रवीण हो जावे, कि-वह केवल कुम्भक में समाधिस्थ रह सके, अर्थात् न रेचक और न पूरक, केवल एक ही स्तम्भन वृत्ति में रह सके, उसको केवल कुम्भक कहते हैं इसके साधन में सफलता प्राप्त करने वाले योगी के लिये अब त्रिलोक की कोई बात ऐसी नहीं जो उसे दुर्लभ हो।

केवलं कुम्भकं सिद्धे रेचपूरकवर्जिते ।
न तस्य दुर्लभं किञ्चित त्रिषुलोकेषु विद्यते ॥ व० सं०

प्राणायाम के अभ्यास से संसार को स्थाई बनाने वाला राग रूपी मोह महामोह शनैः शनैः दुर्बल होने लगता है और निर्विघ्न होने के लिये सामर्थ्य प्राप्त कर लेता है ।

इसी प्राणायाम से योगी लोग सात समुद्र के रोगी को आराम कर सकते हैं, कहां क्या हो रहा है, तत्क्षण ज्ञान प्राप्त कर लेना, दूसरे की मन की बात जान लेना, बहुत दूर की वस्तु को भी प्राप्त कर लेना, एवं अलौकिक क्षमतायें प्राप्त करना इस प्राणायाम साधन में विशेषता है । (लेखक इसमें असमर्थ है)

शक्तिवहन केन्द्र

पहले जिन शक्तिवाहन केन्द्रों का उल्लेख कर आये हैं, संध्या के मत में ये सुषुम्णा में अवस्थित हैं, इसको रहस्यमय शब्दों में पद्म या प्राण स्थान भी कहते हैं । इन पद्मों में सब से निचले भाग में प्राण शक्ति रहती है । इनके यथा क्रम नीचे से ऊपर तक (१) मूलाधार, इसके ऊपर (२) स्वाधीष्ठान, इसके ऊपर (३) मणिपुर, इसके ऊपर (४) अनाहत, (५) विशुद्धाख्य, (६) आज्ञा चक्र और सब से ऊपर (७) सहस्रारदल पद्म मस्तिष्क में रहता है । इनमें विशेषतः

हमें दो केन्द्रों की बात स्मरण रखनी आवश्यकीय है। सबसे नीचे अवस्थित "मूलाधार" और दूसरा सबसे ऊपर अवस्थित "सहस्रारदल पद्म"। मूलाधार में ही समस्त शक्ति अवस्थित है और उसी शक्ति को उठाकर सहस्रदल पद्म में पहुंचाना होता है। संध्या का कहना है कि मनुष्य शरीर में जितना भी 'ओज' (धातु) है, यह सब धातु मस्तिष्क में संचित रहता है। जिसके मस्तिष्क में जितना ही अधिक धातु संचित रहता है, वह उतना ही अधिक बुद्धिवान व अध्यात्मवाद से पूर्ण होता है, यही ओज शक्ति सर्वोत्तम शक्ति है।

सबही मनुष्यों में यह ओज शक्ति न्यून्याधिक मात्रा में विद्यमान है। शरीर की जितनी भी शक्तियां क्रीड़ा कर रही हैं, उसका एक मात्र विकास यही ओज है। यह भी हमें मालूम करना चाहिये कि एक शक्ति ही दूसरी शक्ति के रूप में परिवर्तन होती है। बहिर्जगत में जो शक्ति तड़ित (विजली) या चुम्बक के रूप में परिणत हो जाती है, वही हमारे शरीर में वर्तमान सब का सब निचला केन्द्र इसी शक्ति का नियामक है। इस लिये संध्या का उद्देश्य इसी ओर लक्षित रहता है। इसका कारण यह है कि सम्पूर्ण प्राण शक्ति धातु के रूप में परिणत किया जाय। काम विजय नर नारी केवल धातु को मस्तिष्क में रखते हैं। इसलिये सब देशों में ब्रह्मचर्य पालन करना सर्व श्रेष्ठ धर्म है।

मनुष्य सहज ही में देख सकता है कि कामचेष्टा के आधीन रहने पर मनुष्य के मन के सब धार्मिक भाव चरित्र बल और मानसिक तेज चले जाते हैं। इसलिये देखोगे कि संसार में जिन धर्म सम्प्रदायों में से बड़े धर्म वीरों ने जन्म ग्रहण किया है, उन सम्प्रदायों में ही ब्रह्मचर्य पालन के विषय में लोगों का विशेष लक्ष्य रहा है। इसलिये विवाह विमुख संन्यासियों के दल की उत्पत्ति हुई। तथापि व्रत पालन करने वाले ऋतुगामी स्त्री पुरुषों का अभाव भी नहीं था। ब्रह्मचर्य व्रत को ठीक ठीक समझने के बाद शरीर व मन वाणी से उसका पालन करते रहना गृहस्थ धर्म में नितान्त आवश्यक समझा गया था, क्योंकि भारतीय पूर्व पुरुष गृहस्थ धर्म से ही इतनी उन्नति करते थे कि जिनके शास्त्रों को पढ़ कर आज आश्चर्य करना पड़ता है। ब्रह्मचर्य पालन के विना प्राण साधन करना बहुत ही विपद संकल देखा गया है। क्योंकि प्रायः देखा गया है कि कामी पुरुषों के मस्तिष्क बिल्कुल विकृत हो जाते हैं। यदि कोई संध्यायोग का अभ्यास करना चाहे और साथ ही दुश्चरित्रता का जीवन भी विताना चाहे तो किस तरह से प्राणजित होने की आशा कर सकता है और ओ३म् प्राणः प्राणः कहने का अधिकारी कैसे बन सकता है?

अब इसके साथ प्राणमय पच कोषों का दिग्दर्शन कराना आवश्यक हो जाता है। विना प्राणायाम साधे इन कोषों का उद्धार भी तो नहीं हो सकता है। जिस प्रकार लोहार अपनी

धोंकनी से लोहे को द्रवीभूत कर अपनी इच्छानुसार अस्त्र शस्त्र आदि बनाता है उसी प्रकार प्राणायाम करने से प्राणमय पंच कोषों को अपने २ कर्तव्यों में पूर्णतः दत्तचित्त रखता है। इसलिये प्राणमय पंच कोषोंका उत्थान करना और उनको जानना आवश्यक है।

प्राणमय पञ्चकोष

—:*:—

स्थूल शरीरान्तर्गत प्राणमय पंच कोषों का वर्णन इस प्रकार है कि इस में ध्यान द्वारा प्रवेश करना चाहिये। (१) अन्नमय (२) प्राणमय, (३) मनोमय. (४) विज्ञानमय और (५) आनन्दमय कोष, अब इनका संक्षिप्त विवेचन किया जाता है। क्योंकि सारांश से अङ्गस्पर्श का एक मात्र उद्देश्य अपने अङ्गप्रत्यङ्ग को जानना और उनको सुरक्षित दशा में रखना है।

(१) जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि—शुद्ध चित्त होकर एकान्त निर्जन स्थान में बैठकर बिखरी हुई वृत्तियों को समेट कर अपने शरीर में घुसना होगा। यह शरीर रक्त, रस, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र का बना हुआ है। यह सात धातुओं का पुतला है, इस पुतले को अन्नमय कोष कहते हैं।

(२) अन्नमय कोष के अन्दर घुसो, वहां प्राणमय कोष पाओगे। वह रस है। प्राण, अपान, उदान, समान, व्यान, नाग कूर्म, कृकल देवदत्त और धनंजय। इनहीं रसों में शरीर और मन के व्यापार चलते हैं।

(३) मनोमय कोष—वहां मनके साथ पांच कर्मेन्द्रिय हैं। उस के आगे विज्ञानमय कोष है, जहां बुद्धि की पांच ज्ञानेन्द्रियां हैं। यहीं आनन्दमय कोष भी है। इसका ज्ञान होने से आनन्द प्राप्त होता है।

(४) हृदय कोष—रहमाकाश में अणुपरिणाम लिङ्ग शरीर का ध्यान करो। यह लिङ्ग शरीर १७ तत्वों से बना हुआ है। पांच ज्ञानेन्द्रिय पांच कर्मेन्द्रिय पांच तन मात्रायें, मन और बुद्धि, इन्हीं के भीतर जीवात्मा रहता है। जीवात्मा को प्रसन्न रखने का अच्छा उपाय यह है कि मन को प्रसन्न रखना, सौम्यता मौन अर्थात् मुनियों के समान वृत्ति रखना, मनो निग्रह और शुद्ध भावना, इनको मानस तप कहते हैं।

(५) यहीं जीवात्मा लिङ्ग शरीर के भीतर रहने वाला है, जिस समय सन्ध्या साधक ध्यान द्वारा वहां पहुंचता है, उस समय वह बाहरी स्थूल शरीर को भूल जाता है। अन्नमय प्राणमय और मनोमय कोषों को विज्ञानमय आनन्दमय कोष से पृथक् करता है। विज्ञान मय कोष बुद्धि से सम्बन्धित है

उसके आगे कारण शरीर स्थानी आनन्दमय कोष है। जिसका सम्बन्ध केवल ईश्वरोपासना है। प्राण साधन का कार्य यह है कि ऐसा वातावरण पैदा कर दे कि जो तीन कोषों की तरफ से उठती है उन्हें बुद्धि की जागृति का कारण बनाते हुये आनन्द ग्रहण करे। प्रारम्भिक अवस्था में संध्या साधन के लिये ईश्वर का सच्चा प्रेम पैदा करे। जो इन्द्रियों की ओर जाने वाली न हो किन्तु बुद्धि की ओर ले जावे। यह लहर अन्त में आनन्दालय में जाकर समाप्त हो जाती है, अर्थात् बहिर्मुखी वृत्ति रुक जाती है यही प्राणों का संयम कहलाता है, और यही "ॐ प्राण: प्राण: का भाव है। इसके सध जाने पर साधक को अलौकिक शक्ति उपलब्ध होती है। अब कोई विषय ऐसा नहीं रह जाता है जिसके लिये साधक को बंचित रहना पड़े। ॐ प्राण: प्राण:

चक्षु विज्ञान

ॐ चक्षुः चक्षुः !

हे सर्वद्रष्टा ? सबके देखने वाले ? हमारी आंख हो।

हे अखिल ब्रह्माण्ड के निरखने वाले दिव्य द्रष्टा ! मेरी दिव्य दृष्टि हो, विश्वविलोकन दृष्टि हो, आपकी माया प्रसार देखने की अन्तर्दृष्टि हो और पूर्णजीवन पर्यन्त मेरी दृष्टि हो।

इतनी दिव्य दृष्टि कैसे हो सकती है ? उत्तर में कहा जा सकता है कि उस सर्वद्रष्टा के हम पुत्र हैं, वही विश्व-विलोकन शक्ति उस विधाता ने प्रत्येक मनुष्य को प्रदान की हुई है, वह गुप्त शक्तियां व्यापकरूप से प्रत्येक मनुष्य में विद्यमान हैं। हम लोग पुरातन परिपाटी सन्ध्या कर्म साधन करना त्याग बैठे हैं, अपनी दिव्य शक्तियां को अनिष्टकारी दृश्यों से पतन कर बैठे हैं, यही कारण है कि हम उन शक्तियों के प्रयोग में सन्दिग्ध हो जाते हैं। यदि हम कुछ दिन पुरातन परिपाटी संध्या विधि को कार्य रूप में परिणत कर दें, तो कुछ ही दिनों में सारा सन्देह मिट कर अलौकिक दृश्य देखने में आता है, तब ही साधना के विषय में उत्साह और निश्चय हो सकता है। कुछ ही दिनों में दूसरे की मन की बात और अपने से परोक्ष दृश्य देखने की क्षमता प्राप्त हो जाती है,

चित्र के समान यह सारे दृश्य आप के नेत्रों के सामने नाचने लगेंगे। बहुत दूर की बात तक जान सकने की शक्ति आपको प्राप्त हो सकेगी।

चित्त की एकाग्रता का पहला त्राटक

अभ्यास इस प्रकार कीजिये कि एक फुल्सकेप सफेद कागज पर बीचोंबीच एक रुपये के बराबर गोलाकार 'ॐ' या योंहीं काला लक्ष्य बनाओ और अपने साधना आसन से डेढ़ हाथ के फास्ले पर उस लक्ष्य कागज को दिवाल पर चिपका दो। अब एकाग्रचित्त से प्रथम दिन दस मिनट, दूसरे दिन पन्द्रह मिनट, और तीसरे दिन बीस मिनट एकटक हो कर देखो, आंख झपकने न पावे और अभ्यास बढ़ाते हुए एक घंटे तक ले जाओ। चारपांच दिन में ही उस गोल निशान के आस पास कुछ २ प्रकाश दीखने लगेगा और एक महीने तक वह गोल ॐ अक्षर स्वच्छ प्रकाश युक्त दीखने लगेगा। जब उस बिन्दु में दृष्टि पड़ते ही प्रकाश दीखने लगे तो समझना चाहिये कि यह अभ्यास समाप्त हुआ। लेकिन अभ्यास को जितना ही अधिक कर सको उतना ही अधिक आपको क्षमता उपलब्ध होगी। कम से कम तीन महीने तक अभ्यास को ले जाना चाहिए।

अथवा सुपारी, कमल गट्टा, मोती आदि कोई एक पदार्थ अपने आसन से डेढ़ हाथ के फास्ले पर रख कर ध्यान

पूर्वक देखते हैं। इस त्राटक में अनेक प्रकार के दृश्य दिखलाई पड़ते हैं। इस अभ्यास से अन्तःकरण की एकाग्रता मन की प्रसन्नता, चित्त की स्थिरता प्राप्त होकर आलस्य का नाश होता है। और मन की अस्थिरता नष्ट होकर मन को उत्साह और शान्ति प्राप्त होती है।

दूसरा त्राटक

अब गोल निशाने के स्थान पर, जहां कागज चिपकाया था, एक बड़ी आरसी (दर्पण) लटकाओ। आरसी इतनी बड़ी होनी चाहिये कि अपनी आकृति छाती वक्षःस्थल तक दिखलाई दे। दर्पण में अपनी भौवें के मध्य में एक टक देखते हैं। जब अपनी आकृति में रङ्ग विरंगे पुष्प बरसने लग जायें, तो समझना चाहिये कि यह अभ्यास समाप्त हुआ।

तीसरा त्राटक

अब उसी स्थान पर, जहां कागज या आरसी लटकाई थी, किसी देव या महात्मा के चित्र लटकाओ। चित्र ऐसे देव या महात्मा के होने चाहिये जिसके सदृश तुम बनने की उत्कट अभिलाषा रखते हो, आरम्भ करदो। २० दिन या एक महीने तक बराबर देखते जाओ।

इस चित्र के देखने से आपके प्रश्नों के उत्तर मिलेंगे और मानसिक प्रभाव डालने में बड़ी सहायता मिलेगी।

चौथा मानसिक त्राटक

जब चित्र देखने का अभ्यास समाप्त करो तो वहां देव या महात्मा को नेत्र मूंदे हुए मानसिक चिन्तन द्वारा अपने सामने प्रस्तुत करो। यह अभ्यास कुछ कठिनता रखता है, लेकिन अभ्यास हो जाने पर वही चित्र पूर्णरूप से चलते फिरते उठते बैठते ध्यान द्वारा अपने सामने आने लगे तो इस अभ्यास की समाप्ति समझिये।

इस अभ्यास से मानसिक बल, चित्त की स्थिरता, प्रश्नों के उत्तर, दिव्य दर्शन आदि अलौकिक दृश्य दिखलाई पड़ते हैं। इस अभ्यास से परोक्ष रोगियों के रोग हटाने में बड़ी सहायता मिलती है और संयम साधन में रुचि होती है।

पाँचवा त्राटक चन्द्र दर्शन

चन्द्रे तारा व्यूह ज्ञानम्। पा० यो० ३-२६

एक महीने पर्यन्त चन्द्रमा को एक २ घंटे तक देखते रहते हैं। इसमें कठिनता यह है कि कृष्ण पक्ष में जब चांद निकलता है, तब ही उठकर देखने लगते हैं।

इस अभ्यास की सिद्धि की पहिचान यह है कि अमावस्या के दिन अन्धेरे निर्जन स्थान में ध्यान पूर्वक चन्द्र बिम्ब की प्रतीक्षा कीजिये, जब सम्पूर्ण चन्द्र बिम्ब आपको दृष्टि गोचर होने लगे तो यह इस त्राटक की सिद्धि की परीक्षा है।

इस अभ्यास से दूरदर्शिता, वर्तमान् और भविष्य जानना सहल हो जाता है। अभ्यास करके देखिये कि आपको कितना आनन्द प्राप्त होता है। नेत्रों की ज्योति भरपूर हो जाती है।

छटा त्राटक सूर्य चक्रवेध

भुवन ज्ञानं सूर्य्ये संयमात पा० यो० ३–२५

भुवनों का ज्ञान सूर्य्य संयम से होता है। मनुष्य शरीर भी ब्रह्माण्ड का एक सूक्ष्म रूप है, इसलिये भुवन मनुष्य शरीर को भी कहते हैं। मणिपुर पद्म शरीर ब्रह्माण्ड का सूर्य केन्द्र है, इस केन्द्र से शरीर जगत् की उत्पत्ति होती है। इस प्रकार नाभि रूप सूर्य का संयम करने से शरीर का ज्ञान हो जाता है।

यह तो हुआ भाष्यकारों का विद्वत्ता पूर्ण भाष्य। किन्तु हमारा मत तो केवल अपने अनुभव के आधार पर है, अर्थात् संयम द्वारा सूर्य रश्मियों से अपने नेत्रों द्वारा शरीर ब्रह्माण्ड को प्रकाश देना है। भारतीय कर्मकाण्डीय ब्राह्मणों में यह प्रथा अब भी अपभ्रन्श रूप में विद्यमान् है, कि पूजापाठ से निवृत्त होकर, अपनी उङ्गलियों को तोड़ मरोड़ कर सूर्य दर्शन कर लेते हैं और यही सूर्य संयम की प्रथा की अन्त्येष्टि कर देते हैं।

संध्या साधना वाले महर्षि कह गये हैं कि प्रातः काल पूर्वाभिमुख और सायंकाल पश्चिमाभिमुख करके ही संध्या करनी चाहिये। यह नियम हमारी अनुभव शक्ति को पुष्ट करती

है कि प्रातः संध्या सूर्य निकलने के पहले उठकर और अपने प्राकृतिक नियमों से निवृत्त होकर, पूर्वाभिमुख होकर, आसन बिछाकर संध्या करनी आरम्भ कर देनी चाहिये और साथ ही नेत्रों को फाड़ फाड़ कर सूर्य लक्षित करने के लिये गायत्री जाप आरम्भ कर देना चाहिये। ज्योंही सूर्य भगवान् पृथ्वी के छोर पर पदार्पण करे, त्योंहीं अपनी दृष्टि को सूर्य भगवान् पर गाड़ देनी चाहिये।

प्रथम दिनों में पांच मिनट ही देख सको तो पर्याप्त है लेकिन शनैः २ एक घंटे तक अभ्यास करना चाहिये। इस प्रकार अभ्यास करने से कोई हानि होने की सम्भावना भी नहीं है। पूर्ण मनोबल के साथ सूर्य प्रकाश को अपने नेत्रों में आकर्षण कर दो और अलौकिक शक्तियों को प्राप्त करो*।

---

* सूर्य बिम्ब पर नेत्र दृष्टि स्थिर करने से तुम प्रत्यक्ष देख सकोगे कि सूर्य बिम्ब पर दो बहुत बड़े २ खड्डे हैं और कई छोटे २ हैं, यह आपको स्पष्ट ही दिखलाई देंगे। नेत्रों में शक्ति प्राप्त होने पर सूर्य प्रकाश नेत्रों में 'आकर्षित हो जाता है और साधक को सूर्य निस्तेज, जिस प्रकार कि अन्य ग्रह उपग्रह दिखलाई पड़ते हैं, ऐसे ही सूर्य भी दिखलाई देगा और उस समय सम्पूर्ण रूप से तारा ग्रह दिखलाई पड़ेगें। लेकिन यह दृश्य कुछ ही क्षणों तक दिखाई देता है।

सातवां त्राटक अन्तर्धान

प्रकाशा सम्प्रयोगे अन्तर्धानम् । यो० ३-२० ।

किसी हृष्ट पुष्ट और दर्शनीय पूर्ण नवयौवन सम्पन्न व्यक्ति पर जो कि तुम से प्रेम करता हो, उसके दोनों हाथों की सारी उङ्गलियों को अपनी हथेली के भीतर बन्द करके पकड़ लीजिये और उसके नेत्रों पर अपनी दृष्टि जमावो, जब तक वह तुम्हें देखने में असमर्थ न हो। अगर तीन चार दिन इस अभ्यास पर लग जायं, तो लगाइये। इस अभ्यास के करने के पश्चात् दो मनुष्यों* पर प्रयोग करो। जब इतनी शक्ति प्राप्त करलो कि दोनों व्यक्ति तुम्हारे दोनों हाथों से दोनों व्यक्तियों के एक २ हाथ पकड़ने पर, वह तुम्हें न देख सकें, तो क्रमशः तीन और चार तक मनुष्यों पर प्रयोग करो। अब अगर अभ्यास और पूर्ण ब्रह्मचर्य्य पालन किया होगा तो आप ८, १० मनुष्यों तक को दृष्टि हीन कर सकोगे।

* इन पंक्तियों के लेखक का केवल दो मनुष्यों तक का अभ्यास था। इस प्रकार आप सबके सामने अन्तर्धान हो सकेंगे। अगर कोई महात्मा हमें और कोई योग के चमत्कारों से अन्तर्धान होने की सहल क्रिया बतला देगा, तो संसार उसका ऋणी रहेगा।

श्रोत्र विज्ञान

ॐ श्रोत्रम् श्रोत्रम् !

हे सर्व श्रोत्र (सबकी सुनने वाले) हमारे कान हों।

योगशास्त्र इस मन्त्र का अर्थ इस प्रकार करता है—

शोत्राकाशयोः सम्बन्धसंयमाद दिव्य श्रोत्रम्। यो० ३-४१

कान और आकाश के सम्बन्ध में संयम करने से दिव्य शब्द सुनाई पड़ते हैं।

शब्द आकाश का गुण है और श्रोत्रेन्द्रिय उसका साधन है, अर्थात् श्रोत्रेन्द्रिय और आकाश का एक सम्बन्ध होने से और उसमें संयम करने से दिव्य बातें सुनने की शक्ति आ जाती है। सूक्ष्म व मधुर शब्द जिन्हें साधारणतया कान नहीं सुन सकते, इसमें संयम करने से दिव्य शब्द सुनने की शक्ति प्राप्त होती है।

जिस एक असीम आनन्द में समुद्र की लहरें उठ रही हैं, जिस शब्द में अनन्त आनन्द, अहिंसा, शांति, दया, क्षमा, सत्य, धैर्य ये सब सद्गुणों की वाटिका लहलहा रहीं है, जिसमें शीतल, सुगन्ध, शुद्ध, ऋतम्भरा, बुद्धि रूपी पवन चल रहा है, जिसको सुन कर मन शांत सागर में लय हो जाता है, अमृत भंडार जिसमें छिपा हुआ है, उस सुन्दर पवित्र अपार शब्द को श्रवण कर साधक अशांत दुःख सागर में डुबोने वाले क्षणिक सुखों को व्यर्थ और तिरस्कृत करता हुआ, संध्या साधना के एक अंग को पूर्ण करता है

जिस समय साधक किन्हीं दिव्य शक्तियों को किसी रूप में आभास करना चाहता है, अथवा अन्तस्थ कर्णेंद्रिय की ओर लगाता है, तो वहां अलौकिक अनाहत शब्द सुनाई पड़ता है, जिस शब्द को कुछ समय निरन्तर सुनने से साधक की वृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है और परमानन्द को प्राप्त होती है। अभ्यास इस प्रकार आरम्भ कीजिये—

(१) कानों को मोम लगी हुई रूई से अच्छी तरह से बन्द करलो और शांत चित्त हो बैठ जाने पर अपनी सम्पूर्ण शक्ति अन्तर्नाद सुनने को दे दीजिये। पहिले तो कुछ कठोरता के शब्द सुनाई पड़ते हैं। लेकिन अभ्यास परिपक्व होने पर अच्छे सुरीले शब्द सुनाई पड़ते हैं और बहुत आनन्द आता है। जब बिना मोम दिये अन्तर्नाद सुनाई पड़ने लग जाय तो, समझना चाहिये कि यह अभ्यास समाप्त हुआ।

(२) एकान्त निर्जन बन में जाकर, जहां किसी प्रकार का कोलाहल न हो, समग्र शक्ति कानों को देकर, वायु मिश्रित शब्द सुनने में मन को विवश करो, दृढ़ परिपक्व अभ्यास होने पर अकस्मात् वायुमिश्रित शब्द सुनाई पड़ता है।

(अनुभवनीय है)

मणिपुर पद्म

ॐ नाभिः

हे जगज्जनक! हमारी नाभि हो।

इस मन्त्र की पतञ्जली ऋषि अपने योग शास्त्र में इस प्रकार से व्याख्या करते हैं—

नाभिचक्रे ताराव्यूहज्ञानम्। ३-२६

नाभि चक्र में संयम करने से शरीर की बनावट का ज्ञान हो जाता है। शरीर त्रिदोष, वात, पित्त, कफ और सात धातु का बना है, अर्थात् त्वचा, चर्म, मांस, स्नायु, अस्थि, मज्जा, (चर्बी) और शुक्र का बना हुआ है। नाभिचक्र में संयम करने से समस्त शरीर का, कि वह किस प्रकार की उपर्युक्त वस्तुओं से बना है और उनका किस प्रकार संग्रह है, ज्ञान हो जाता है। वह ज्ञान किस प्रकार का होता है? इसके लिये इस प्रकार की व्याख्या कीजिये-

मेरुदण्ड, मस्तिष्क, सुषुम्णा में ऐसे असंख्य चेतना-चक्र होते है, उनमें ऊपर लिखित मणिपुर पद्म (नाभि-स्थान) शरीर ब्रह्माण्ड का सूर्य-चक्र है। प्रथम मूलाधार चक्र है, जो कि गुदा और मूलेन्द्रिय के मध्य में है। द्वितीय स्वाधिष्ठानचक्र इस का वाह्याच्छादन है। इसके अनन्तर सुषुम्णा के भाग में दस चेतना-चक्र मानो इस पद्म के दस दल हैं। इन दस दलों में से जो ब्रह्मरन्ध्र तक जाने

वाली सुषुम्णा नाड़ी (सूक्ष्म नालिका) मानो इस पद्म के दस नाल हैं। एक चेतना चक्र में से निकलने वाले तन्तुओं तथा उसके बाहर के भाग में रही हुई 'ईड़ा' 'पिंगला' अर्थात वाम भाग दक्षिण स्वर वाहिनी नाड़ियों की जाल मानों इस पद्म के दस नाल मणिपुर (नाभि) चक्र है, उसके दलों में पूर्व दिशा से लगा कर यथानुक्रम सुषुप्तिः (गाढ़निन्द्रा) तृष्णा (ईर्षा) पिशुनता (दोष प्रगटी कारण) विषाद इन दस दलों में दस भावों का ज्ञान हो जाता है। प्राणायाम से जीवात्मा जब प्राणारूढ़ हो कर मणिपुर पद्म के प्रत्येक दलों में व्याप्त होता है, तब उसे इन दस भावों का ज्ञान हो हो जाता है। यही सूर्यका भुवन (स्थान) नाभि स्थान है। यहीं से ज्ञान जन्तुओं में प्रकाश उत्पन्न होके उसके मस्तिष्क में केन्द्र बनता है। इसी नाभी चक्र से समस्त नाड़ी चक्रों का विस्तार होता है, एवं यहीं से विद्युत् की उत्पत्ति होती है और इसी को मूल केन्द्र कहते हैं। यहीं प्राण और अपान का सम्मिलन होके आक्सिजन कारबन बन कर शरीर का रक्त शुद्ध होता है। गीता में इस प्रकार लिखा है--

अपाने जुह्वति प्राण प्राणोऽपानं तथाऽपरे।

प्राणायाम गति रुद्ध्वा प्राणायाम परायणाः॥

अर्थात् कोई अपान में प्राण का होम करते हैं और कोई प्राण में अपान का होम करते हैं, इस प्रकार प्राण और अपान की गति का रुद्ध करके कितने ही प्राणायाम में लीन हो जाते हैं। अर्थात् मूल केन्द्र सूर्य चक्र मणीपुर में शुद्ध प्राण वायु

जाता है, उस शुद्ध प्राण वायु को मिला देना ही प्राणायाम में अपान का होम करना है इसी को प्राणाम अर्थात् प्राण का अवरोध कहते हैं। सूर्य बाह्य प्राण का उदय हो के नेत्रों द्वारा अन्तः प्राण का उदय होता है । क्योंकि नेत्रों में ही रूप ग्रहण करने की शक्ति नेत्रों द्वारा होती है।

सूर्य केन्द्र से सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाश मिलता है, अगर सूर्य न हो तो सारे नक्षत्रादि ग्रह नष्ट जायगें । नाभिस्थान इस शरीर का सूर्य केन्द्र है, यहीं से शरीर जगत् को प्रकाश मिलता है। इसी केन्द्र से शरीर जगत की पालना होती है । अगर संध्या साधक नाभिस्थान सूर्य रूपी केन्द्र का उत्थान करता है, तो 'ॐ नाभि" इस मन्त्र का कहने का अधिकारी हो सकता है । क्योंकि प्राणायाम द्वारा ही इस केन्द्र का उत्थान हो सकता है, जिसको प्राणायाम अध्याय में लिख आये हैं।

संध्या साधक के लिये जब अभ्यास इतना उच्चतर होने लगे कि धारणा शक्ति एकही स्थान पर, अर्थात् नाभिस्थान पर एकत्रित हो जाये तो अकस्मात् ही आन्तरिक हलचल स्पष्ट समझ में आ सकेगी।

कोई २ साधक श्वासन से प्राणायाम कर मणिपुर पद्म को जागृत करते हैं । श्वासन इस प्रकार करते हैं कि पृथ्वी पर दरी बिछाकर बिला तकिया के सीधे सोकर लेट जाते हैं नित्य प्रति १५-२० मिनट। और प्राणायाम करते रहने ही से कुण्डलिनी जागृत हो जाती है।

अनाहत चक्र

ॐ हृदयम्

हे हृदयेश्वर ! हमारा हृदय हो ?

योग शास्त्र इस प्रकार लिखता है——

हृदये चित्तं संवित् । ३-३३ ।

हृदय में संयम करने से चित्त का ज्ञान हो जाता है ।

हृदय कमलाकार पिण्ड है, चित्त उसमें रहता है । इस पिण्ड में संयम करने से उसके भीतर रहने वाले का साक्षात् ज्ञान संध्या साधक को हो जाता है । जब तक चित्त एकाग्र रहता है, तब तक चित्त वृत्तियां अपने २ कार्य में लगी रहती हैं । यहां तक आत्मा की वहिर्मुखी वृत्तियों की सीमा के ही अन्तर्गत है । परन्तु उद्देश्य अन्तर्मुखी वृत्ति को जागृत करने का है । उसके जागृत के काम में लाने का साक्षात् साधन अज्ञात है ।

अनाहत चक्र हृदय स्थान में है, आत्मा शरीर धारण करके चक्षुआदि इन्द्रियों और चित्त के अधिष्ठान पूर्वक किस तरह विषय भोग करता है, इस चित्त की विचित्रता का ज्ञान बिना सध्या विज्ञान साधे नहीं हो सकता है । देह के बीच षट्चक्र हैं, इन्द्रियों से बाह्य जितने विषय हैं, वे उस षट्चक्र ही में होकर बिजुली की नाईं जोर से द्विदल पद्म (बुद्धिस्थान) में पहुंचते हैं, फिर पीछे उसी

समय सहस्रदल पद्म में पहुँचते हैं और उसी क्षण वहां से उन्हीं के द्वारा बाह्य इन्द्रियों को विषय बोध कराते हैं, उसी के पीछे हम लोगों को विषयानुभव होता है। परन्तु यह कार्य इतने स्वल्प समय में सम्पन्न होता है कि जीव उसे पकड़ नहीं सकता है। संध्या साधना इसीलिये की जाती है कि उसकी बुद्धि स्थिर हो, अर्थात् साधना द्वारा अति-सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय को जानने की शक्ति आ जाये। इसी कारण वह इस सूक्ष्म विषय को अर्थात् चित्त की विचित्रता को जान सकता है, जब बुद्धि जीव के लिये यह असम्भव है।

प्रश्नोपनिषद् में आया है, उनमें एक २ नाड़ी के सौ २ भेद हैं, उन सौ नाड़ियों में से एक नाड़ी के ७२ हजार प्रति शाखायें हैं। इन नाड़ियों से व्यान नामक वायु को प्राण अन्दर लेता है और अपान वायु को बाहर छोड़ता है। इसी प्रकार सारे शरीर में, (व्यानम् सर्व शरीरम्) रक्ताभि-सरण करता है। यह व्यान गति के आघात का संज्ञापक है। इसलिये हृदय की गति को जान सकने की शक्ति संध्या साधक को आ जाती है।

आत्म कर्म द्वारा प्राण को उठाकर हृदय में रखने से आत्म ज्योति का दर्शन होता है। उस ज्योति में लक्ष्य रह कर ध्येय पदार्थ का ज्ञान हो जाता है। इसलिये साधक को चित्त संयम करना अनिवार्य हो जाता है।

विशुद्ध पद्म

ॐ कंठः ।

हे अमृत स्वरूप ! हमारी गर्दन हो ।

कंठ के मूल जहां हड्डियों का संयोग होता है, तालु के नीचे जहां चन्द्रमा का निवास स्थान है, यहां चन्द्रमा अमृत पैदा करता है, जिसे जीवनामृत भी कहते हैं। इस पर संयम करने से नवयौवना बनो रहती है। गुरुपदेश उपाय से जीभ के नीचे तन्तु उसे शस्त्र द्वारा छेदन करके तालु छिद्र में प्रवेश किया जाता है, योगशास्त्र इस प्रकार समझाता है

कंठे कूपे क्षुत्पिपासा निवृत्तिः । ३–२९ ।

कंठ के कूप में संयम करने से भूख प्यास की निवृत्ति होती है । जिह्वा के नीचे मूल समान एक नस होती है, उस तन्तु के अधोभाग में कण्ठ और कण्ठ के अधोभाग में सूक्ष्म छिद्र है, जहां उदान वायु रहता है, किये हुए भोजनादि को यह ही आमाशय में पहुँचाता है, और जब आमाशय खाली होता है तो उसकी खबर यही उदान वायु आमाशय को देता है। कण्ठ कूप में संयम करने से उदान का कार्य रुक जाता है। अर्थात् वह वायु आमाशय को भूख प्यास की सूचना नहीं देता, अतः भूख प्यास लगती ही नहीं और कण्ठ से राल का आमाशय में जाना भो बन्द हो जाता है फिर तो आमाशय में पकने के लिये आये पदार्थ अपकावस्था में ही पड़े रहते हैं। वे जब तक नहीं पकाए जायें तब तक भूक कैसे लगेगो ?

अज्ञा चक्र और ब्रह्मरन्ध्र

ॐ शिरः

हे पूज्य शिरोमणि ! हमारा शिर हो।

योग शास्त्र इस मन्त्र का अर्थ ऐसा करता है—

मूर्ध्नं ज्योतिषि सिद्ध दर्शनम् । ३-३१ ।

मूर्द्धा की ज्योति में सयंम करने से सिद्धों के दर्शन होते हैं, शिर में कपाल (खोपड़ी के भीतर एक अत्यन्त प्रकाशमान छिद्र होता है, उसमें संयम करने से योगी चेहरे की आकृति इस प्रकार की होती है, जिस से योग में निपुण व्यक्ति उसे देख कर यह समझ ले कि यह योगाभ्यासी है। इस प्रकार समझ लेने से उस अभ्यासी से सिद्धि प्राप्त योगी मिलने में संकोच नहीं करते, जैसा कि अयोगियों से वे सदैव किया करते हैं।

कई टीकाकार इस योग सूत्र का यह अर्थ करते हैं कि—कपाल के भीतर जो छिद्र है, उसमें संयम करने से अन्तरिक्ष में विचरने वाले अतीन्द्रिय सूक्ष्म शरीर धारी जो सिद्ध पुरुष हैं उनका दर्शन हो जाता है। इन पंक्तियों के लेखक को भी यही निश्चय बना हुआ है। बहुत नहीं तो दो चार बार ऐसे महात्माओं के दर्शन हुये, जो प्रकाश में प्रकाश युक्त दिव्य दर्शन देख पड़े हैं।

स्थूल दर्शी मनुष्य स्थूल ज्ञान का अधिकारी है, सूक्ष्मदर्शी न होने से सूक्ष्म ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता है। आलोक रहस्य, उत्ताप रहस्य, विद्युत् रहस्य, चुम्बक रहस्य, आदि रहस्यों का उद्भेद करने की क्षमता हम में नहीं है। स्थूलदर्शी मानव नहीं जानता कि सत्य क्या है, वस्तु क्या है, अहं क्या है सत् और अहं जान लेने पर हमारी पाचों इन्द्रिय सहायता न कर सकेगी। नव द्वारों से काम न चलेगा। इसलिये उसको छटवी इन्द्रिय और दसवें द्वार की आवश्यकता होगी वह द्वार कहां है? इसके उत्तर में संध्या विज्ञानी कहते हैं कि वह दसवां द्वार दोनों भौओं के मध्य में है। उसका नाम ऊर्ध्व योनी है। योनी मुद्रा की सहायता से वह दसवां द्वार खुल जाता है। उसमें एक क्षुद्र प्रकाश बिन्दु है, उसी प्रकाश के सहारे भीतर घुसना होता है. उस आलोकमय निभृत कक्षा में अन्तरात्मा विराजमान है। वह ज्योतिर्मय बिन्दु अलोक मण्डल से परिवेष्टित है। ऊर्ध्व रेता योगी का ऊर्ध्व योनी में बीज स्थापित करके अपने प्रकृत जीवन का वैलक्षण्य भासित होता है।

वाह्य वृत्ति प्राणायाम में फुप्फुसों में भरे हुये सब श्वास को नासिका द्वारा निकाल दिया जाता है। फिर इसी अवस्था में प्राण को बाहर ही रोके हुये कुछ काल तक निश्चेष्ट बैठा रहना पड़ता है। मस्तिष्क के ज्ञान केन्द्र द्वारा यह भावना की जाती है कि मैं सारे शरीर के प्राण को मस्तिष्क की ओर खींच रहा हूँ। ठोढ़ी को कण्ठ से लगा दिया जाता है। हृदय को स्तब्ध करने का यत्न किया जाता है। नाभि और नाभि भाग को पीछे रीढ की हड्डी पर सुकोड़ कर

मिला दिया जाता है। इस सारी क्रिया के अभ्यास के लिये इसी प्रकार कई बार किया जाता है। जब ठहरा न जाय सके और श्वास छोड़ने की प्रवल प्रेरणा हो तो श्वास नासिका से सहसा ही अन्दर भरके तत्काल शनैः २ बाहर निकाल दिया जाता है, फिर प्रथम अवस्था में ही ठहर जाना होता है।

वही इस क्रिया को करते हैं, जिन्हें प्राणायाम का अभ्यास अच्छा सधा हो, अन्यथा नहीं। ॐ शिरः।



यश बल

ॐ बाहुभ्यां यशोबलम् ।

हे सम्पूर्ण बलदाता ! हमारे बाहुओं में यश बल प्राप्त हो ।

योगशास्त्र इस मन्त्र का अर्थ यों लिखता है—

मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणाम् सुख दुःखपुण्यापुण्य विषयाणां भावनाश्चित्तप्रसादनम् । १-३३ ।

सुखी पुरुषों से मित्रता, दुखियों पर करुणा, पुण्यात्माओं पर हर्ष और पापियों पर उपेक्षा की भावना से चित्त निर्मल रहता है ।

मैत्री, करुणा और हर्ष से चित्त में उत्साह और शान्ति रहती है और पापियों की उपेक्षा करने से मनुष्य क्रोध से बचता है । उत्साह शांति और क्रोधाभाव से चित्त की एकाग्रता शीघ्र होने लगती है । यह चित्त स्थिर होने का पहला उपाय है ।

यह कैसा विलक्षण मन्त्र है, कितना ऊँचा आदर्श है, कैसा उच्च भावना है, इस मन्त्र ने समस्त कल्पित मतमतान्तरों को परास्त कर दिया है । किसी भी सम्प्रदाय ने कामादिक के मारने का इतना उत्तम उपदेश किया है ?

ईसाई धर्म पुस्तकों में ईसा मसीह का उपदेश है कि— "जो तुम्हारे गाल पर थप्पड़ मारे तुम मारने वाले की तरफ दूसरा गाल पसार दो" । इस उपदेश का उत्तर ईसाई धर्म

के देशों का इतिहास देगा। लेकिन संध्या विज्ञानाचार्यों का इतिहास इस मन्त्र की साक्षी देता है कि संध्या संस्कृति के पुरुष-रत्नों ने क्रूर से क्रूर नर राक्षसों को पकड़ कर उन्हें किस प्रकार क्षमादान दिया। मनुष्य धर्म यही शिक्षा देता है कि—बाहुओं में बल हो, लेकिन यश के साथ हो। निर्बलों को बल शाली बनाने के लिये हों, पीड़ितों के कष्ट निवारण के लिये हों, गर्वियों के गर्व दमन के लिये हों, गुरुओं के चरण चुम्बन के लिये हों। फिर योग शास्त्र बल संयम करने का विधान बतलाता है—

बलेषु हस्ति बलादीनि। ३ २५।

बलों में संयम करने से हाथी आदि का बल प्राप्त हो जाता है। हाथी आदि जिसके बल में भी संयम किया जायगा, उसी का बल साधक को प्राप्त हो जायगा। संध्या साधक यम नियम पालन करके, (जिसमें ब्रह्मचर्यादि अनेक दिव्य बल प्रद नियम सम्मिलित हैं) स्वयमेव अत्यन्त बलवान होता है, फिर संयम के द्वारा उसको और भी बल प्राप्त कर लेना क्या कठिन बात रह जाती है।

अब पाठक समझ गये होंगे कि यह मन्त्र कितना महत्व पूर्ण है। आर्य धर्म की नीव तपोबल पर है। संध्या साधकों ने कितने ही यशस्वी योधाओं को पैदा किया है, जिसमें महाराजा अशोक के शिला लेखों से जो उसने अपने राज्य के प्रत्येक कोने में और कई जगह चट्टानों और स्थम्भों पर लिखे थे, जो भ्रंशरूप में आज भी मिलते हैं। इस

प्रकार की घोषणा की थी. कि—"वास्तविक विजय वह है जो मनुष्य अपने ऊपर धर्म बल से प्राप्त करता है, खड्ग बल से देशों को जीतने का विचार छोड़दें और यह न समझें कि खड्ग के बल से विजय प्राप्त करना राजाओं का धर्म है, यदि उन्हें विवश होकर युद्ध करना पड़े तो भी धैर्य और सहिष्णुता को हाथ से न जाने दें। स्मरण रक्खें की वास्तविक विजय वही है. जो धर्म से की जाती है"।

अहा ? संध्या वन्दन ही ऐसा वन्दन है, जो कठिन से कठिन बन्धनों को चूर २ कर डालता है। कोई बन्धन ऐसा नहीं जा सन्ध्या बन्धन करने वाले का बन्धन में डाल सके। वह तो जरा मरण के बन्धनों तक को तो चूर २ कर डालता है, तब भौतिक शरीर के बन्धनों की बात ही क्या कहनी है ? उसका शरीर सुडौल, मुख मण्डल में प्रभा बाहुओं में बल, नेत्रों में आकर्षण शक्ति प्राप्त करके सूक्ष्माति सूक्ष्म विषयों का निरीक्षक, कुशाग्र बुद्धि, दुखियों का मित्र सुखियों का अग्रगण्य, अल्प भाषी, धैर्य शील और धर्मात्मा हो जाता है। अर्थात "उदार चरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्" जहां जाय, जिधर जाय पुष्प वर्षा से स्वागत होता है।

व्यायाम सम्बन्धी बहुत सी पुस्तक निकल चुकी है, संध्या साधक उन्हीं से लाभ उठायें तथापि कुछ कसरतें जो शारीरिक और मानसिक शक्ति बढ़ाने मे उपयोगी साबित हुई हैं, लिखेंगे क्योंकि यदि हम शरीर के लिये मानसिक बल शरीर मे लगादें तो मनोबल नष्ट हो जायगा, क्योंकि प्रायः देखा गया

है कि शारीरिक बल वाले सूक्ष्म विषयों को समझने में यत्किञ्चित असमर्थ होते हैं और यदि मन की ही उन्नति में सम्पूर्ण बल व्यय कर दें तो शरीर निर्बल पड़ कर आत्मग्लानि पैदा कर देता है। इसलिये ऐसी कसरतें की जावें जो शरीरिक और मानसिक बल दोनों को सुरक्षित रख सकें। अपने शरीर का बल अध्ययन कर शान्त चित्त से इन व्यायामों को करो, कुछ दिन में शरीर और मन पर स्वामित्व का अनुभव होने लगेगा। आन्तरिक अवयवों का संचालन होगा, आनन्द और उत्साह प्राप्त होगा। दोनों सन्ध्या समय सन्ध्या करने के अनन्तर केवल १० मिनट इन अभ्यासों को करो, तत्पश्चात कुछ समय श्वासन से लेट जाओ और मन को एकाग्र कर अपने शरीर को वज्र समान बनने का निश्चय करो।

(१) सीधे जमीन पर लेट जाओ, हाथों को शरीर से मिला दो। अब केवल पैरों को धीरे २ परन्तु लकड़ी के समान सीधे रख कर उठाओ और यहां तक उठाओ कि सीधा ऊपर होकर शिर की तरफ मुड़ा कर जमीन छू दे। ऐसा कई बार करो।

(२) पहली कसरत की स्थिति में मुँह और पेट के बल जमीन में लेट जाओ, केवल हाथों के बल शिर की तरफ से, सारे शरीर को लकड़ी की तरह उठाओ, जिससे शरीर किञ्चितमात्र मुड़े नहीं, ऐसा कई बार करो।

(३) जमीन पर सीधे लेट जाओ, हाथों को शिर की तरफ फैला दो, धीरे २ उठने का प्रयत्न करो और अपने

हाथों को सीधे तने हुये बैठे २ ले जा कर पैरों के अंगूठों को पकड़ ने का प्रयत्न करो। ऐसा कई २ बार करो।

(४) पैरों को मिलाकर सीधे खड़े हो जाओ, हाथों को शिर की तरफ ऊँचा कर दो, जोर से श्वास ले कर छाती भर दो, हाथों को धीरे २ पीठ की तरफ घुमाओ, अब श्वास को धीरे २ छोड़ते हुये और हाथों को भी सीधे लाकर उसी प्रकार अपने आगे की तरफ झुकाते हुये, यहां तक कि टांगें तनी हुई रहें पैर छूने का प्रयत्न करो। ऐसा कई बार करो।

(५) पैरों को मोड़ कर पद्मासन से बैठ जाओ और कमर एक सीध में रक्खो, पैरों को बिना हिलाये शरीर को दाहिना, बायां, पीछे आगे खूब हिलाओ।

(६) पांच की स्थिति में खड़े हो कर ऐसा ही करो अतिलाभ दायक है।

(७) पैरों को चौड़ा कर, हाथों को कन्धे की तरफ बाहर निकाल कर खड़े हो जाओ, अब दाहिनी तरफ जितना झुक सकते हो खूब झुको, इसी प्रकार बाईं तरफ भी, आगे पीछे जितना हो सके झुकते जाइये।

(८) सीधे खड़े हो कर एक पांव पर सारे शरीर का बोझ रखदो, जो पांव उठा रक्खा है, उसको बक्राकार घुमाओ इसी प्रकार अब दूसरे पांव पर खड़ा हो कर ऐसा ही करो।

प्रत्येक क्रिया करने पर शरीर को खुब हाथ से मलो। प्रतिदिन सांय प्रातः करनी चाहिये। वृद्धों को यह कसरत अवश्य करनी चाहिये और विशेष कर मानसिक कार्य करने वालों को एक ही महीने में चमत्कारिक फल प्राप्त होगा।

दान महात्म्य

ॐ करतल कर पृष्ठे ।

हे शक्ति सम्पन्न दाता ! हमारे हाथ अन्य हाथ की हथेली के ऊपर हों, अर्थात् दान देने वाली हों ।

इस मन्त्र में आदर्श गृहस्थ धर्म प्रदर्शित किया गया है । गृहस्थ मात्र को बैकुण्ठ धाम बनाने का उपदेश किया है । प्रातः उठते ही ब्रह्म यज्ञ से निवृत हो कर हवन करना है, भोजन करने के पहले बलिवैश्व करना है, अतिथियों का भोजन खिलाना है, याचक को दान देना है. माता पिता की सेवा शुश्रूषा करनी है, आचार्य देव की पग बन्दना करनी है, एवं जितने यज्ञ हमने करने हैं सब में "करतल कर पृष्ठे" करना है,

'सर्वस्व दान भावनाभिव्यञ्जकः' त्याग का अपूर्व आदश इस एकही सूत्र में ओत प्रोत संग्रहित है, त्याग ही जीवन है, भोग का नाम ही मृत्यु है । सन्ध्या स्पष्ट हो अमृतत्व प्रदायिनी मन्दाकिनी रूप धर कर मरण धर्मा मानव जाति को जीवन दान देने के लिये भूमंडल पर तपोधन ऋषियों द्वारा प्रवाहित की गई है । पुरुष सूक्त में विराट रूपी यज्ञ पुरुष के देवताओं द्वारा यजन होने का क्या खूबी से वर्णन किया है, अर्थात् 'यज्ञेन यज्ञ मयजन्तः देवा स्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन" । ऋ० १०-६०-१६ । इसी को लक्ष्य कर भगवान कृष्ण गीता में इस प्रकार वर्णन करते हैं—

यज्ञशिष्टाशिनःसन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्विषैः ।
भुञ्जन्ते ते त्वघं पापं ये पचन्त्यात्मकारणात् ॥

अर्थात् यज्ञ करके शेष बचे हुये भाग को ग्रहण करने वाले सज्जन सब पापों से मुक्त हो जाते हैं, परन्तु यज्ञ न करके अपने ही लिये जो भोजन पकाते हैं, वे पापी लोग पाप भक्षण करते हैं। इसी प्रकार मनुस्मृति में भी लिखा है, कि—जो मनुष्य अपने लिये ही भोजन पकाते हैं, वे पाप भक्षण करते हैं। क्योंकि प्राण मात्र की उत्पत्ति अन्न से होती है, अन्न पर्जन्य से होती है, पर्जन्य यज्ञ से उत्पन्न होता है और यज्ञ की उत्पत्ति कर्म से होती है, कर्म की उत्पत्ति ब्रह्म से, अर्थात प्रकृति से और ब्रह्म अक्षर से, अर्थात् परमात्मा से। इसलिये समझो की सर्वगत ब्रह्म ही यज्ञ में सदा अधिष्ठित है।

इस प्रकार 'करतल कर पृष्ठे' की महिमा है कि मरण धर्मा मनुष्य को अमरत्व प्राप्त कराना सन्ध्या सिखलाती है। मनुस्मृति के चौथे अध्याय में गृहस्थ आश्रम के सिलसिले में पहले यह बतलाया गया है कि—ऋषियज्ञ, देव यज्ञ, भूत यज्ञ, मनुष्य यज्ञ और पितृ यज्ञ इन वैदिक पांच यज्ञों को कोई गृहस्थ न छोड़े। फिर कहा है कि इनके बदले कोई २ इन्द्रिय में वाणी का हवन कर, वाणी में प्राण का हवन कर अन्त में ज्ञान से भी परमेश्वर यजन करते हैं। इन्हीं मन्त्रों को लेकर सन्ध्या में साररूप से प्रार्थना की गई है कि अन्त में इस नाशवान शरीर तक को हवन में स्वाहा हो। "ॐ भस्मान्त ँ शरीरम्"। इस प्रकार यजन

मय पुरुष कोई द्रव्य रूप, कोई तप रूप, कोई योग रूप कोई स्वाध्याय रूप यज्ञ किया करते हैं। सन्ध्या साधना क्या है? चौरासी लक्ष योनियों को कुचल डालने के लिये ब्रह्मशास्त्र है

परोपकार मूक सृष्टि में भी पाया जाता है, इसलिये परमावधि तक पहुँचने के प्रयत्न में ज्ञानी मनुष्यों को सदैव लगे रहना चाहिये। भारतीय विज्ञानवादियों की दृष्टि सदा अध्यात्म की तरफ रही है। इसलिये वह कह गये हैं कि—"परोपकार करना जीवन है और दूसरे को कष्ट देना मौत है"। मनुष्यों में केवल परोपकार बुद्धि ही का उत्कर्ष हुआ है, यह बात नहीं, किन्तु न्याय, दया, उदारता, दूरदृष्टि, तर्क, शूरता, धृति, क्षमा और इन्द्रिय निग्रह इत्यादि अनेक सात्विक गुण की भी वृद्धि हुई है। इसलिये सन्ध्या में सार रूप से "करतलकरपृष्ठे" आया है।

इन्द्रिय नियोग

ॐ भूः पुनातु शिरसि ।

जगत् जीवन प्राण स्वरूप प्राणप्रिय 'ॐ' पवित्र करे मेरे शिर को ।

ॐ भुवः पुनातु नेत्रयोः ।

प्रकृति का उदान, अर्थात् उसमें रहकर, उससे पृथक्, अथवा दुःखनाशक 'ॐ' पवित्र करे आंखों को ।

ॐ स्वः पुनातु कण्ठे ।

जगत् का व्यान, अर्थात् सर्वव्यापक 'ॐ' पवित्र करे गर्दन को ।

ॐ महः पुनातु हृदये ।

सबसे महान् 'ॐ' पवित्र करे हृदय को ।

ॐ जनः पुनातु नाभ्याम् ।

ब्रह्माण्ड के सृजने वाले 'ॐ' पवित्र करे नाभि को ।

ॐ तपः पुनातु पादयोः ।

तप अर्थात् ज्ञान, श्रम स्वरूप अथवा दुष्टों को दण्ड देने वाले 'ॐ' पवित्र करे पैरों को ।

ॐ सत्यं पुनातु पुनः शिरसि ।

नित्य अविनाशी 'ॐ' पवित्र करे फिर शिर को ।

ॐ खं ब्रह्म पुनातु सर्वत्र ।

सर्वव्यापी और सबसे बड़ा 'ॐ' पवित्र करे सारे शरीर को।

वर्त्तमान् वाक् यन्त्र से सन्ध्या घोखने वालों में ऐसा बिरला ही महानुभाव होगा जो महान् मन्त्रों का अर्थ हृदयङ्गम करता हो और इन मन्त्रों का प्रभाव अपने अन्तरात्मा में खींचतो हो। 'ॐ जनः पुनातु नाभ्यम्' इस मन्त्र से किस २ ने अपने जननेन्द्रिय को शुद्ध किया ? क्योंकि इन्हीं मन्त्रों कीं बदौलत ऋषियों ने, भगवान् श्री कृष्ण ने, स्वामी शंकराचार्य ने, ईसा ने, महर्षि दयानन्द ने, और वर्त्तमान् काल के नरपुङ्गव कर्मचन्द गान्धी ने, ईश्वरीय दिव्य शक्ति प्राप्त की है। भगवान् श्री कृष्ण तो सोलह कला निधान पूर्ण कहलाये। महात्मा गान्धी तो इन मन्त्रों की पवित्रता से आप ही पवित्र नहीं होते हैं, किन्तु जो सृष्टि के आदि से पतित कहलाते हैं, उन्हें तक शुद्ध कर देते हैं। मुँह रट्टुओं का क्या कहना है ? वे तो उन रिकार्डों की तरह हैं जो मौका पड़ने पर सुई के संघर्ष से भरे हुए शब्द सुना ही देते हैं। ऋषियों ने कितनी योग्यता प्राप्त की थी ? प्रथम उन्होंने इन्द्रिय संयम द्वारा इन्द्रिय शक्तियों को विकसित करने का कैसा अच्छा विधान बतलाया और फिर मार्जन मन्त्रों से उनको सचेत कर सत् मार्ग गामी होने के लिये सायंप्रातः ईश्वर से प्रार्थना की जाती है। समय आवेगा जब सारे सिद्धान्ती एक मत होकर इन मन्त्रों से पवित्र होंगे।

जिस मनुष्य ने अपनी इन्द्रियों को शुद्ध कर लिया है, जिसने स्वयं संसार का उपकार करना है, तथा शान्ति जिसके जीवन का भूषण होना है, भय, शंका निर्बलता और इन्द्रिय लोलुपता कोसों दूर भगाना है, वही इन मार्जन मन्त्रों का मनन करे। दुःख और विपत्ति के समय इन्द्रियों के वश में हुआ मनुष्य ईश्वर को याद करता है। कारण कि जो अपनी इन्द्रियों को स्वेच्छा से विचरने देता है, वह आत्मा को निर्बल करता है। जिन्होंने इन्द्रिय निर्बलताओं को दूर कर बलिष्ठ बना दिया है, वह दूसरों को सहारा देने वाली यष्टिका बन सकते हैं।

जीवनादर्श की आरम्भावस्था में मनुष्यों को अपनी इन्द्रियों को शुद्ध करना पड़ता है, जो उसे अजेय और प्रबल जान पड़ती है। परन्तु ज्यों २ उसका आत्मज्ञान बढ़ता जाता है, त्यों २ वह इन्द्रियों के वास्तविक स्वरूप को समझने लगता है। तब उसे चित्र की तरह स्पष्ट अपनी निर्बलता प्रतीत होने लगती है। तब स्पष्ट शब्दों में कह उठता है कि "यह तो एक प्रतीत मात्र है"। ऐसा समझ लेने पर वह अपने आहार व्यवहार में ऐसा परिवर्तन कर देता है, जिससे वह अपनी इन्द्रियों को वश में कर सकता है, तब ही वह उन बुराइयों का नाश कर सकता है। इस प्रकार जिसे इन्द्रिय द्वारा आत्मज्ञान हो जाता है' वह पाप कर्म कभी नहीं कर सकता। (विशेष चरित्रगठनाध्याय में देखो)

'आत्मसात्

प्राणायाम मन्त्राः

ॐ भूः, ॐ भुवः, ॐ स्वः, ॐ महः, ॐ जनः,
ॐ तपः, ॐ सत्यम् ।

इसके साथ और भी मिला दीजिये—

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धी महि । धियो यो नः प्रचोदयात । ओ३म् आपो ज्योति रसोऽमृतं ब्रह्म भू र्भुवःस्वरोम् ।

ॐ भूः—पूर्ण अथवा जिसमें सब भूतों की उत्पत्ति, सकल ब्रह्माण्ड का उत्पादक, जगत् जीवन ।

ॐ भुवः—जिसने अपरिमित विश्व को उत्पन्न किया, अथवा जिसकी भावना मात्र से जगदुत्पत्ति हुई, एवं अनन्त सुख स्वरूप ।

ॐ स्वः—सुख स्वरूप ।

ॐ महः—पूज्य, सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो, तथा अत्युत्कृष्ट ।

ॐ जनः—उत्पादक, सकल ब्रह्माण्ड का कर्मानुसार रचयिता ।

ॐ तपः—ज्ञान स्वरूप अर्थात् कर्मानुसार फल देने वाला। उत्पत्ति और प्रलयकारक।

ॐ सत्यम्—ध्रुवसत्य, कभी नाश न होने वाला।

द्वितीय वाटिका

भूः—मैं आत्मा हूं। मेरा नाश नहीं है। अर्थात् मैं हूं

भुवः—मैं शरीर से पृथक् हूं, शक्ति, विचार और चेतना का केन्द्र हूं। मैं निर्लेप हूं, निष्पाप हूं, निर्विकल्प हूं।

स्वः—मैं अमर हूं, मेरा नाश नहीं हो सकता।

महः—मेरा अन्त नहीं, चित्तादि अन्तःकरण मेरे कार्य के औजार हैं और कर्त्ता मैं हूं।

जनः—जो कुछ दिखलाई पड़ता है, मुझ से पैदा है।

तपः—मेरा शरीर आवरण मात्र है, किन्तु मैं समग्र-शक्ति केन्द्र हूँ। मेरा नाश नहीं।

सत्यम्—जिसका नाश न हो।

तृतीय वाटिका

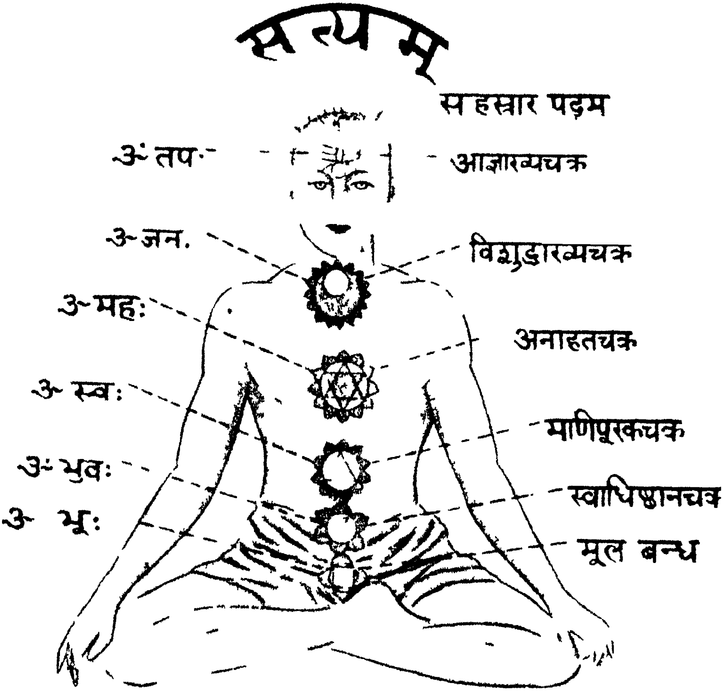
ॐ भूः—महापटि सहस्रदल निर्वाण कला 'मूलाधार चक्र' प्राणशक्ति। यह स्थान कुण्डलिनी का सुषुप्तिस्थान है।

स्थूल शरीर के विशेष २ प्रत्यङ्गों से जो और छः चक्र शक्तिकेन्द्र हैं, मूलाधार उन्हीं का सबसे बड़ा केन्द्र कहलाने से प्राणपोषक केन्द्र कहलाता है। यौगिक उपाय से जब मूलाधार जागृत हो जाता है, तब यह चक्र विश्वव्यापक कुण्डलिनी शक्ति को आत्मसात् करने की चेष्टा करता है। इस तरह कुण्डलिनी जागृत होकर मेरूदंड के बीचोंबीच सुषुम्णा मार्ग से (चन्द्रनाड़ी, सूर्यनाड़ी की सहायता से). ऊपर को प्रवाहित होकर आज्ञा चक्र को प्रज्वलित करती हुई अन्त में 'सहस्रार' में जाकर परमात्मा से मिल जाती है।

ॐ भुवः—स्वाधीष्ठान चक्र, ईड़ा, पिंगला, भिंगनी, दुहनाड़ी लिङ्ग के आसपास मूलाधार के कुछ ऊपर। स्वाधीष्ठान के प्रदीप्त होने पर मनुष्य सूक्ष्मतर लोक में स्वच्छन्द विहार करता है, इसलिये यह ज्ञानवती कुण्डलिनी कही गई है।

ॐ स्वः—स्वाधीष्ठान के ऊपर 'मणिपुर' है, अँग्रेज़ी में इसको Solar Plexus सौर जाल कहा है। मणिपूरक चक्र मनोविकारों का सज्ञान प्रभुत्व प्रकाश करता है इसे नाभिस्थान विष्णुग्रन्थि भी कहते हैं। (इसकी विशेष व्याख्या ॐ नाभि में देखिये)

ॐ महः—हृदय Heart हृत् पद्म या यों कहिये कि अनाहत चक्र। सबसे महान् कनक कमल। इसके उद्भासित


सत्यम्
सहस्रार पद्म
ॐ तपः
आज्ञाख्यचक्र
ॐ जनः
विशुद्धाख्यचक्र
ॐ महः
अनाहतचक्र
ॐ स्वः
मणिपूरकचक्र
ॐ भुवः
स्वाधिष्ठानचक्र
ॐ भूः
मूल बन्ध

पृष्ठ १४० के सामने

होने पर मनुष्य की बुद्धि के ऊपर जो ज्ञान है, उसका उद्भव होता है।

ॐ जनः——आज्ञा चक्र, इसका स्थान भ्रूमध्य। साधारण जीवों का आज्ञाचक्र अविकसित रहता है, जिस समय कुण्डलिनी शक्ति जागृत होकर सुषुम्णा द्वारा आज्ञाचक्र में प्रवेश करती है, उस समय भ्रूमध्य में पहुँचकर उन्हें संचालित करती है। एक धनात्मक और दूसरी ऋणात्मक गति वाली बड़ी तीव्रगामी बनकर ऊपर वाली ग्रन्थी पर आघात करती है, तब आज्ञाचक्र विशुद्ध होकर दिव्य दृष्टि प्राप्त करता है, इसी की सहायता से अणिमादि अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती हैं। यही चक्र जोकि अविकसित दशा में व्यर्थ पड़ी रहती है।

ॐ तपः——महापीठ दल, निर्वाण कला, शिर।

आज्ञाचक्र के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र में सहस्रार पद्म है। इसका स्थान मस्तिष्क के सामने कुछ ऊँचाई पर है। जब प्राणारूढ़ होकर जीवात्मा सहस्र दल पद्म में अवस्थित होता है तब अतीन्द्रिय दृष्टि से इस चक्र में एक हजार पद्म दृष्टि पड़ते हैं। इसी कारण इसका नाम 'सहस्रार पद्म' कहा गया है। इस कुण्डलिनी को जागृत करना ही इसकी अन्तिम सीमा है और संध्या

विधि में जो प्राणायाम मन्त्र आये हैं, वह स्पष्ट भासित होते हैं। जब सहस्रार पूर्णरूप से जाग उठता है, तब देह से जीवात्मा—

ॐसत्यम्——में समर्पण हो जाता है। अब चाहे आत्मा अपनी देह से स्वच्छन्द विचरण करे, चाहे पुनः देह में प्रविष्ट हो जावे, लेकिन यह सब करते हुये अपनी चेतनता बनाए रखता है। यही निर्द्वन्द्वता का होना कहा गया है क्योंकि अब इसमें साधक

तदा द्रष्टुःस्वरूपे ऽवस्थानम्। यो० १-३।

यही 'सत्यम' योग की चरम सीमा है। अब इस शरीर से उठकर उस परमज्योति को प्राप्त कर 'ॐ सत्यम्' में स्थित हो जाता है।

प्रयतात्मा होने के लिये योग मार्ग का अवलम्बन करना आवश्यक है। परन्तु हम लोग वैसा नहीं करते, योग का नाम सुनते ही मृत्यु का भय उपस्थित होता है। प्रयतात्मा होने से यह रहस्य अपने आप समझ में आ जाता है कि यह देह छोटासा ब्रह्माण्ड है, परिदृश्यमान् बृहत् ब्रह्माण्ड में जो कुछ दिखलाई पड़ता है, वह इस पिंड शरीर में सब

कुछ है । इसलिये ब्रह्माण्ड, क्या अदृश्य जगत को जानने के लिये इन प्राणायाम मन्त्रों का प्राण के अवरोध से सहजही में ज्ञान हो जाता है। इन विभूतियों का वर्णन जो ऊपर बतलाया गया है, वह इस देह रूपी अणुब्रह्माण्ड में विद्यमान है । इसका निगूढ तात्पर्य निजबोध रूप है।

सन्ध्या साधक अब साधक नहीं रहा, किन्तु अब साधन द्वारा विज्ञान के उच्च शिखर को प्राप्त हो कर अपना स्वरूप आपही स्पष्ट होने लग गया है । इस अवस्था मे साधक आत्मरूप रहता है. उस अवस्था में उसका चित्त भी नहीं रहता है। क्योंकि प्राण की चंचल अवस्था मन है, आत्मा के स्थिर होने ही से प्राणों में मन का लय हो जाता है। तब द्वैत भाव भी नहीं रहने पाता । इस लिये आत्मरत होने के लिये प्राण के अवरोध से इन मन्त्रों का साधन किया जाता है, जिसमे 'ॐ सत्यम्' ही शेष रह जाता है ।

प्राणायाम-मार्ग के अवलम्बन करने से साधन द्वारा क्रम से पृथक् अवस्था को प्राप्त होता है, जिससे 'हम' 'हमारा' नहीं रहता है। अर्थात् असत सत् मे मिला देने का भी कोई भाव नहीं रहता है, उसी अवस्था को प्राप्त होने के लिये यह मन्त्र आये हैं ।

इस प्रकार नित्यप्रति नाना विधि उपायो से अभ्यास बढ़ाता हुआ निर्विघ्नता पूर्वक अव्यक्त तत्व को साक्षात् कर सकते हैं।

अघमर्षण

ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः । १ ।

ॐ समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायतः ।
अहो रात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी । २ ।

ॐ सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत् ।
दिवञ्च पृथ्वी चान्तरिक्ष मथो स्वः । ३ ।

ऋ० मं० ८ मं०८ व० ४८

अर्थ—(ऋत) Moral laws ज्ञान अर्थात् वेद त्रिगुण प्रकृत्यादि स्थूलसूक्ष्म जगत्का कारण (च) और (सत्यम्) Enternal laws प्रकृति अध्यात्मिक और भौतिक, त्रिगुणात्मक अर्थात् सत रज और तमोगुण से युक्त, जिसके नाम अव्यक्त अव्याकृत सत् प्रधान प्रकृति जो स्थूल और सूक्ष्म जगत् का कारण है (अभि इध्यात् तपसः) परमात्मा ने,अपने सामर्थ्य से सब जगत को रचा है। (ततः) उस परमात्मा से (रात्र्य अजायत) प्रलय के पीछे हजार चतुर्युगी तक जो रात्रि कहलाती है, (प्राणविज्ञान को देखो) जब अन्धकार रहता है, उस अन्धकार में प्राणपुरुष अव्यक्त अवस्था में रहते हैं। (ततः

समुद्रः अर्णवः) तदनन्तर उसीके आकर्षण से पृथ्वी और मेघ मण्डल के बीच Space जो महासमुद्र है वह भी पूर्व सृष्टि से (समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत) उस महाकाश के उत्पत्ति के पश्चात् संवत्सर अर्थात् क्षण मुहूर्त प्रहर आदि काल भी पूर्व सृष्टि के समान उत्पन्न हुए।

भावार्थ—उस पूर्ण ब्रह्म परमात्मा का ध्यान करता हुआ कि उस अनन्त ज्ञान शक्ति प्रदाता से सम्पूर्ण विद्या का भंडार ज्ञान विज्ञान और त्रिगुणात्मक प्रकृति अर्थात् सत रज तम कारण भूत होकर पूर्व कल्प के अनुसार वह लोक लोकान्तर रचा और यह मेरा शरीर भी पैदा हुआ, उसी ईश्वर के न्याय से जब मैंने घोर पाप किये थे हजार चतुर्युगी तक अन्धकार में पड़ा रहा। फिर उस दयालु की कृपा से पृथ्वी, मेघमण्डल और महासमुद्र और उसके पश्चात् सम्वत्सर और सम्वत्सर के पश्चात् मुझे भी पैदा किया। फिर उस न्याय स्वभाववाले ने पूर्व कल्प के तुल्य रात्रि दिवस घटिका पल और क्षणादि में अनेक बार जन्ममरणादि चक्रों में मुझे पैदा किया सूर्य चन्द्र के धारण पोषण करने वाले ने पूर्व कल्प के तुल्य हम सबके लिये स्थान निर्माण किये और आदि लोकों का प्रकाशक पृथ्वी और सूर्य लोक के बीच में जो लोक हैं, तथा आकाश के बीच में जितने लोक हैं, उन सब में पूर्व कल्प के नियम पर सबही स्थानों में मुझे रचा। तब अब भी इस परम पुनीत मानुषी जन्म में संध्या विज्ञान द्वारा आप को जान कर शुद्ध निष्पाप (अघमर्षण) न हुआ तो इसी प्रकार कल्प कल्पान्तरों में जन्म मरण के चक्करों में पड़ना पड़ेगा।

प्रश्न होता है कि इस मन्त्र मे कौनसा विधान पापों से निवृत होने का है, जब कि यह विकास वादियों का मुँह तोड़ उत्तर दिया गया है कि—यह सृष्टि परमाणुओं के संयोग से अनेक बार बन चुकी है और अनेक बार होने की सम्भावना बनी रहती है। जड़ प्रकृति स्वयं कोई कार्य नहीं कर सकती है। (क्योंकि वैज्ञानिक Force एक शक्ति को मानते हैं)। अर्थात अभिद्यात् और तपसः ज्ञान स्वरूप वही संसार का निमित्त कारण है। वही प्रकृति करता को विकृत्ति करता है, अर्थात मामावस्ता हो जाती है। विज्ञान प्रकृति को अनादि मानता है, लेकिन प्रकृति बिना कर्त्ता के मम असम कैसे बनती है ? यह इस बात को स्पष्ट करता है कि ऋत' और 'सत्य' के निघर्षण से यह सृष्टि सम और असम हो जाया करती है। तब इसमें अघमर्षण होने का निधान क्या है ?

इस मन्त्र ने दो कारण मनुष्य के सामने प्रस्तुत किये हैं। एक तो यह कि अखिल ब्रह्माण्ड में सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि लोक लोकान्तर ईश्वर की अचूक गति को सूचित करते हैं। क्योंकि वह अशरीरी होने पर भी शरीरी की तरह आचरण करता दिखाई देता है, अर्थात् कर्म करते हुये भी अकर्मी और अलिप्त है। इसी प्रकार मनुष्य को समझना होगा कि—जैसे ईश्वर के प्रत्येक कार्य यन्त्रवत् कार्य करते रहते हैं, वैसे ही मनुष्य भी बुद्धि पूर्वक किन्तु ज्ञान पूर्वक कर्म करता हुआ, किसी प्रकार स्वार्थ और अभिमान से विरक्त रहता हुआ मरण पर्यन्त यज्ञ 'कर्म' करते रहने से अन्त मे अपने शरीर तक को यज्ञ में स्वाहा करदे, अर्थात गृहस्थ

सुखों को परित्याग कर लोक सेवा के लिये अपने को स्वाहा करदे । इस जगत् में ज्वार भाटा हुआ ही करता है, प्रत्येक मनुष्य को कर्म करने ही पड़ते हैं, किन्तु कर्म कैसे करने चाहियें ? यही समझ कर मनुष्य अपने को संयम में रक्खें । क्योंकि निशदिन जब हम इन मन्त्रों का मनन करते हैं, तो दृढ़ विश्वास हो जाता है, कि ईश्वर सत्य की ही जय करता है, तब यह जानकर सत्य में अटल विश्वास हो जाता है जिससे वह दुःखों को सहन करने की शक्ति रखता है, ममता रहित हो जाता है, ईश्वर का ध्यान करता हुआ अन्त में ब्रह्म लीन अर्थात मोक्ष को प्राप्त होता है । इसी अघमर्षण मन्त्र से भगवान् कृष्ण गीता में अर्जुन को जो युद्ध में मोहग्रस्त हो कर कर्त्तव्यच्युत हो रहा था, कैसा उपदेश देते हैं कि हे अर्जुन ! —

यस्त्विन्द्रियाणी मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तःस विशिष्यते । अ० ३–७

नियतं कुरु कर्मत्वं कर्म ज्यायोह्यकर्मणः ।
शरीर यात्रापि च तेन प्रसिद्धयेदकर्मणः । अ० ३–८

हे अर्जुन ! जो मनुष्य इन्द्रियों को मन से नियम में रखकर संगरहित हो कर कर्म करने वाली इन्द्रिय द्वारा कर्म योग का आरम्भ करता है, वह श्रेष्ठ पुरुष है । इसलिये तू नियत कर्म कर । कर्म न करने से कर्म करना अधिक अच्छा है । तेरे शरीर का व्यापार भी कर्म बिना

नहीं चल सकता है । मन को अंकुश में रखते हुये भी मनुष्य शरीर द्वारा यानी कर्मेन्द्रिय द्वारा कुछ न कुछ तो करेगा ही। परन्तु जिनका मन अंकुशित है उनके कान दूषित बातें नहीं सुनेगें। जिनका मन अपने वश में है, वह जिसे हम लोग विषय समझते हैं, उसमें रस नहीं लेगा । ऐसा मनुष्य आत्मा को शोभा दे, ऐसा कर्म करेगा । ऐसे ही कर्मों का करना कर्म मार्ग है। इससे विषयासक्ति को स्थान नहीं । फिर गीता में भगवान् कहते हैं—जो सब कर्म परमात्मा को अर्पण करता है और भगवान् ही में परायण रहता है, आसक्ति का त्याग करता है और प्राणिमात्र से द्वेष रहित हो कर रहता है, वह परमात्मा को पाता है।

इससे स्पष्ट हो गया है कि मनुष्य देह केवल निष्काम कर्म करने के लिये ही बनाई गई है। क्योंकि प्रकृति का स्वभाव है, कि वह कर्म कराये, और प्रकृति का सम्पादन अक्षर ब्रह्म करता है, इसलिये सर्व व्यापक ब्रह्म प्रत्येक शुभ कर्मों में प्रतिष्ठित रहता है। इस प्रकार जो मनुष्य प्रवर्तित चक्र का अनुसरण नहीं करता है, वह अपना जीवन पापी बनाता है और इन्द्रियों के सुखों में फंसा रहता है, वह व्यर्थ ही जाता है ।

यह अन्तिम मनुष्य शरीर शुभ अभिलाषी का सूचक है। मनुष्य का शुद्ध अलिप्त वासना के हुये बिना समाधान नहीं हो सकता है, तब तक शान्ति कहां ? शुद्ध रूप का प्रयत्न ही सच्चा और एक मात्र पुरुषार्थ है। और यही आत्म-दर्शन है। आत्मदर्शन का जितना सच्चारूप इस अघमर्षण

मन्त्र में आया है, शायद ही अन्य धार्मिक पुस्तक में मिलता हो। हृदयमथन से प्रसाद प्राप्त होता है। त्याग शक्ति पैदा करने के लिये ज्ञान की आवश्यकता होती है। वैसे बहुतेरे पंडित जानते हैं, यद्यपि उन्हें कंठाग्र होता है, परन्तु उनके कर्मों को देखिये भोगादिकों में ही मस्त पाओगे, उनका ज्ञान शुष्क पांडित्य में पड़ा है। इसलिये संध्या मन्त्रों में यह अघमर्षण आया है, जो प्रत्येक दिवस दोनों समय इस बात को सूचित करते हैं कि कर्म करो, लेकिन कर्मों में लिप्त न रहो।

दूसरा भाव इस मन्त्र का यह है, कि ज्ञान और वैराग्य से परमेश्वर की प्राप्ति होती है। अगर ऋत् और सत् का यथार्थ ज्ञान न प्राप्त कर सकते हो तो इसी प्रकार कल्प कल्पान्तरों तक जन्म मरण के फेर में पड़े रहोगे। प्राणायाम के अवरोध से इन्द्रिय निग्रह अर्थात् इन्द्रियों की निस्सारता प्रतीत होने लगती है, तब अनन्त ज्ञान में परितृप्त होता हुआ जन्म मरणादि के भय को संहार कर अमरत्व प्राप्त करता है। प्राणायाम करते हुये करोड़ों सूर्य और चन्द्रमा की भांति शुक्ल वर्ण ज्योति पुंज दिखलाई पड़ते हैं। उस ज्योति पुंज को ध्यान करते हुये जो योगी ब्रह्मरन्ध्र फाड़कर प्राण वायु को निकाल लेते हैं, वह उस ज्योतिस्वरूप में लय हो जाते हैं, अर्थात् अघमर्षण हो जाते हैं।

रात्रि अन्धकार, अर्थात् धूम तामसी शक्ति अज्ञान के साथ रहती है, जब प्राणायाम द्वारा सूर्य चन्द्र का प्रादुर्भाव हो जाता है, तो साधक अपने को प्रकाश में पाता है, इसलिये निरन्तर अभ्यास करते हुये योगी को न जरा है, न मृत्यु अर्थात् अघमर्षण हो जाता है। इसका वास्तविक तात्पर्य यह है कि सप्त व्याहृति आदि महात्माओं का गूढ़ रहस्य प्राणायाम साधन द्वारा शुद्धत्व का साक्षात्कार करना अघमर्षण कहलाता है। भृकुटि के मध्य में आत्म द्वारा प्राण को उठाकर प्रकृति प्रदेश से विलग करना ही अघमर्षण है।

संध्या साधन द्वारा अघमर्षण मन्त्र के मनन करने वाले को स्वप्न में भी दुःख और क्लेश नहीं होता है। उसके सद्गुण उसके रक्षक होते हैं। पापरहित मनुष्य देव का मन स्वच्छ सुन्दर निर्मल की भांति होता है, जिसमें उसे धूर्त और पाखंडियों के रूप स्पष्ट दिखलाई पड़ते हैं। जिस साधक ने अघमर्षण से अपने आभ्यन्तर विचारों और मन के सन्तापों को दूर कर दिया है, वह किसी भी प्रकार की आपत्तियों से नहीं डरता है। जिसने अपने मन पर विजय प्राप्त कर लिया है वह अवश्य ही बाह्य घटनाओं पर विजय प्राप्त कर सकता है। अघमर्षण से यह भी अभिप्राय है कि मन के सम्पूर्ण विकारों को निकाल कर शुद्ध और पवित्र करना और पूर्ण रूप से स्थिर करना। इस प्रकार अपनी सब प्रकार की मनोवृत्तियां जो पहले दुःखदाई थीं

अब एक मुख होकर एक ही महान् उद्देश्य की पूर्ति की ओर लग गई हैं, और सुखदाई हो रही हैं। अर्थात् अन्धकार की ओर से प्रकाश की तरफ जा रही हैं। यह ज्ञान होने लगता है। अघमर्षण होने से यह भी तात्पर्य है कि सर्व प्रकार की कषाय और वासनायें दूर हो गई हैं, और बुद्धि निर्मल हो गई है, इच्छाओं ने परमेश्वरीय इच्छा को धारण कर लिया हो, और स्वार्थ ने साथ छोड़ दिया है।

अथैधांसि समिधोऽग्निर्भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा।

भगवान् कृष्ण कहते हैं कि—हे अर्जुन जैसे सूखी लकड़ियों को अग्नि स्वाहा कर देती है, वैसे ही ज्ञान रूपी अग्नि सब पापों को नष्ट कर डालती है। तब उसकी विवेकख्याति पूर्णता को प्राप्त हो जाती है इसी को मोक्ष भी कहते हैं। इस पद पर पहुँचे हुये मनुष्य का ज्ञान निर्मल हो जाता है। रजोगुण तमोगुण का आवरण हट जाता है, क्लेश तथा वासनाएँ भी नष्ट हो जाती हैं। इस पर पतञ्जली ऋषि कहते हैं—

तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्यानन्त्याज्ज्ञेयमल्पम्। ४ ३१।

तब सब आवरण और मल से पृथक् हुए ज्ञान के अनन्त होने से ज्ञेय अल्प रह जाता है। इस अवस्था में पहुँचे हुये संध्या साधक का ज्ञान निर्मल और अनन्त होता है। रजोगुण और तमोगुण का आवरण अब उस ज्ञान से हट जाता है। अधिकतर बातें वह अपने ज्ञान से जान लेता है जो शेष रह गये हैं उनका उस सर्व शक्तिमान से सम्बन्ध है।

मनसा परिक्रमा

'आचमन मन्त्र से तीसरी बार आचमन'

तदनन्तर गायत्र्यादि मन्त्रों के अर्थ विचारपूर्वक परमेश्वर की स्तुति और उपकार का ध्यान पश्चात् प्रार्थना करे और सब उत्तम कामों में ईश्वर की सहायता की याचना करे और सदा पश्चात्ताप और उदास भाव से यह प्रार्थना करे कि मनुष्य शरीर पा कर हम लोगों से जगत् का उपकार कुछ भी नहीं हुआ इसलिए हम लोग भी जीवमात्र के उपकारी बन कर इस जगत् को सुख धाम बना सकें। आत्मा को अन्तर्यामी रूप से जाने और आनन्द स्वरूप व्यापक परमेश्वर को यथावत् जान कर उसमें अपने आपको मग्न कर अत्यन्त आनन्दित होना चाहिये। जिस प्रकार डुबकी मारने वाला अथाह जल समुद्र में डुबकी मार कर बाहर आता है, वैसे ही सब मनुष्यजाति अपनी आत्मा को शुद्धज्ञानस्वरूप व्यापक परमेश्वर में मग्न करके, फिर मनसा परिक्रमा में प्रवेश करे।

ॐ प्राची दिगग्निरधिपति रसितो रक्षिताऽदित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु योऽस्मान द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः।

अर्थ—(प्राचोदिगग्निरधिपतिः) जो पूर्व दिशा अर्थात् जिस ओर हमारा मुख हो उस ओर जो ज्ञान स्वरूप अग्नि जो सब जगत् का स्वामी (असितः) बन्धन रहित (रक्षिता) सब प्रकार से रक्षा करने वाला (आदित्या इषवः) जिसके अस्त्र (बाण) आदित्य के किरण हैं । उन सब गुणों के अधिपति ईश्वर के गुणों को हम लोग बार २ नमस्कार करते हैं । (रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नमः एभ्यो अस्तु) जो ईश्वर के गुण और परमात्मा के रचे पदार्थ जगत् की रक्षा करने वाले हैं, और पापियों को बाणों के समान पीड़ा देने वाले हैं, इन को हमारा नमस्कार हो । इस लिये कि जो प्राणी अज्ञान से हमारा द्वेष करते हैं, तथा अज्ञान से धार्मिक पुरुषों का तथा पापियों का हम द्वेष करते हैं उन सब की बुराई को उन सब बाण रूप किरण अपने मुख में दग्ध करते हैं, अथवा जिससे किसी का हम लोग द्वेष नहीं करते और कोई हम पर और अन्य प्राणी हमसे द्वेप न करे, किन्तु हम लोग सुख पूर्वक परस्पर मित्र भाव से रहें ।

पूर्व दिशा अथवा सामने की ओर का ज्ञान स्वरूप परमेश्वर स्वामी है सब प्रकार के बन्धनों से रहित और हमारी रक्षा करने वाला है । सूर्य की किरण रक्षा करने वालों का साधन है । उन सब स्वामियों, रक्षा करने वालों

तथा अग्नि स्वरूप रक्षा करने वाले साधनों को बार २ नमस्कार हो। जो अज्ञान वश हमसे वैर करता है, अथवा जिससे हम वैर करते हैं, उसको आप के जबड़े में अर्थात् न्याय पर छोड़ते हैं।

ॐ दक्षिणादिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो० ।०। पूर्ववत्

अर्थ—(दक्षिणादिगिन्द्रोऽधिपतिः) जो हमारे दाहिनी ओर दक्षिण दिशा है, उसका अधिपति इन्द्र अर्थात् जो पूर्ण ऐश्वर्य वाला है। (तिरश्चिराजीरक्षितः) जो कीट पंतग वृश्चिक आदि तिर्य्यक कहलाते हैं, उनकी जो पंक्ति है, उनसे रक्षा करने वाला एक परमेश्वर है। (पितरइषवाः) जिसकी सृष्टि में ज्ञानी लोग बाण के समान हैं। शेष पूर्ववत् ०।

हे परमेश्वर आप परम ऐश्वर्य के स्वामी हमारे दक्षिण की ओर विराजमान हैं, आपही हमारे स्वामियों के स्वामी हैं, बुरे स्वभाव वाले बिना हड्डियों के बिच्छू आदि जीवों से हमारी रक्षा करते हैं और ज्ञानियों द्वारा हमें ज्ञान देते हैं शेष पूर्ववत्०—

ॐ प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्न मिषवः तेभ्यो नमो०—

अर्थ—(प्राची दिग्वरुणोधिपतिः) जो पश्चिम दिशा अर्थात् अपने पृष्ठ भाग में है, उसमें वरुण जो सबसे उत्तम सब का राजा परमेश्वर है। (पृदाकूरक्षिताऽन्न मिषवः) जो बड़े २ अजगर सर्पादि विषधर प्राणियों से रक्षा करने वाला है जिसके अन्न अर्थात् पृथिव्यादि पदार्थ बाणों के समान हैं। श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों की ताड़ना के निमित्त हैं। तेभ्यो नमो० पूर्ववत्—

हे सौन्दर्य सागर! आप हमारे पिछली ओर विराजमान हैं, आपही हमारे राजाधिराज हैं, भयङ्कर शब्द करने वाले तथा सर्पादि विषधर प्राणियों से हमारी रक्षा करने वाले हैं सब अन्न उत्पन्न करके हमारी पालन होती है। शेष पूर्ववत

ॐ उदीचीदिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिता शनिरिषवः, तेभ्यो नमो०——

अर्थ—(उदीचीदिक सोमोऽधिपतिः) जो अपनी बाईं ओर उत्तर दिशा है, उसमें सोम नाम से अर्थात् शान्त्यादि गुणों से आनन्द करने वाले जगदीश्वर का ध्यान करना चाहिये (स्वजो रक्षिता शनिरिषवः) जो अच्छो प्रकार रक्षा करने वाला, जिसके बाण विद्युत् हैं। शेष पूर्ववत

हे सौम्यस्वभावपरमात्मन्! आप हमारे उत्तर। दिशा बाईं ओर में व्यापक हैं, हमारे रक्षक हैं। आप के माता अर्थात जन्म दाता कोई नहीं आप ही हमारी विद्युत आदि उपद्रवों से रक्षा करते हैं। शेष पूर्ववत—

ॐ ध्रुवदिग्विष्णुरधिपतिः कल्माष ग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो०—

अर्थ—(ध्रुवदिग्विष्णुरधिपतिः) ध्रुव दिशा अर्थात् जो अपने नीचे की ओर है, उसमें विष्णु अर्थात व्यापक नाम से परमात्मा का ध्यान करना (कल्माष ग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः) जिसके हरित रङ्ग वाले वृक्षादि ग्रीवा के समान है, जिसके बाण के समान सब वृक्ष हैं, उनसे अधोदिशा में हमारी रक्षा करे। शेष पूर्ववत०—

सर्व व्यापक परमात्मा जो हमारे नीचे की ओर है, उसमें भी आप व्यापक हैं इधर भी आपही हमारे स्वामी हैं। हरित रङ्गवाले वृक्षादि ग्रीवा के समान हैं लता वृक्षादि हमारी रक्षा के लिये बाण रूप साधन हैं। शेष पूर्ववत—

ॐ उर्ध्वादिग् बृहस्पतिरधिपतिश्श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमो०।

अर्थ—(ऊर्ध्वादिक् बृहस्पतिरधिपतिः) जो ऊपर दिशा है. उसमें जो बृहस्पति वाणी का स्वामी परमेश्वर है, उसको अपना रक्षक जानें, जिस के बाण के समान वर्षा के बिन्दु हैं, उनसे हमारी रक्षा हो। शेष पूर्ववत—

हे वेद शास्त्र तथा लोकों के अधिराज सर्व महान प्रभो! आप हमारे ऊपर की दिशा में भी विराजमान हैं, आप हमारे स्वामी हैं, आप पवित्र स्वरूप ज्ञानमय कुष्ट आदिरोगों से हमारी रक्षा करने वाले हैं, वृष्टि के बिन्दु रक्षा के साधन हैं। शेष पूर्ववत—

स्पष्ट चित्र मनसा परिक्रमा।

—:*:—

संख्या	दिशा	अधिपति	किससे रक्षा करता है	साधन क्या है ?
१	पूर्व	अग्नि	बन्धनों से टेढे चलने वाले	सूर्य की किरणों तथा विद्वान
२	दक्षिण	इन्द्र	मनुष्य तथा बिच्छू आदि	चन्द्र किरणों, तथा विद्वान
३	पश्चिम	वरुण	सर्पादि विषैले जन्तुओं से	अन्नघृत
४	उत्तर	सोम	स्वयं उत्पन्न होने वाले कीटादि	बिजुली
५	नीचे	विष्णु	विषैले गैस	वृक्षादि से
६	ऊपर	बृहस्पति	आक्रमक रोगों से	वर्षा का जल

अब हम पाठकों की जानकारी के लिये महाभारत में मनसा परिक्रमा का संक्षेप से दिग्दर्शन कराते हैं, जो गरुड़ ने गालब से इस प्रकार कहा है—

गरुड़ कहते हैं हे गालव ! जिस स्थान से सब लोकों का प्रकाशक सूर्य उदय होता है और संध्या के समय साध्य नामक गण देवता लोग तपस्या करते हैं, जिस जगह से बुद्धि को लोग प्राप्त करते हैं, धर्म के दोनों नेत्र सूर्य चन्द्रमा जहां प्रतिष्ठित हैं, जिस दिशा में यज्ञ के सम्पूर्ण पदार्थ हव्य होकर सब दिशाओं को शुद्ध करते हैं, जो दिशा पितृयान की मार्ग स्वरूप है, जिस दिशा को प्रजापति की कन्याओं ने सर्व प्रथम प्रजा उत्पन्न की थी, उसी का नाम पूर्व दिशा है।

सूर्य देव ने इसी स्थान पर पहले ब्राह्मणों को गायत्री उपदेश किया था, तेज और किरण धारण करने वाले भगवान सूर्य पहले इसी दिशा से उदय हो कर क्रोध करते हुये कृतघ्न और असुरों का प्राण हनन करते हैं। इसलिये यदि पूर्व की दिशा देखने की इच्छा न हो तो और दिशा का वृतान्त सुन। उद्योग पर्व अ० १०६।

गरुड़ बोले यह दक्षिण दिशा है। पहले सूर्य ने देवयज्ञ के अनुष्ठान में यह दिशा श्रौतविधि गुरु कश्यप को दक्षिणा में दान किया था। इस दिशा में तीनों लोकों का पितृपक्ष

प्रतिष्ठित है। धुवां पोने वाले देवता लोग इसी दिशा में निवास करते हैं। विश्वेदेवा नाम तेरह देवता हैं वे लोग बीच में पितरों के समान पूज्य और समान भाग पाकर उन लोगों के सङ्ग सदा एकत्रित होकर इसी दिशा में वास करते हैं। पंडित लोग इसी दिशा को धर्म का दूसरा द्वार कहते हैं। क्योंकि इसी दिशा से सूक्ष्म से सूक्ष्म सब भूतों की परमआय का निर्णय होता है। देवर्षि पितर लोग ऋषि और राजर्षि लोग परम सुख से निवास करते हैं। ब्राह्मणों का सत्य धर्म और पुण्य पाप रूप सब कर्म इस दिशा में चित्रगुप्त के पास विद्यमान है, जो पुरुष कर्म से आत्मा को स्थिर करता है, इसी दिशा में मृत पुरुषों के कर्मों की गति होती है।

एक बार इसी दिशा में सब को आना होता है। परन्तु यह अज्ञानान्धकार से ढकी हुई है, इसी से इसको सहज में प्राप्त नहीं कर सकते। पुण्य कर्म न करने वाले अधम पुरुषों का विरोध करने के निमित्त इसी दिशा में कई सहस्र महा विकट आकार के राक्षसों की सृष्टि हुई।

इसी स्थान में नागराज वासुकि तक्षक और ऐरावत आदि नागकुलों सहित भोगवती नामक नगरी विराजमान है। मरने के समय इसी प्रकार महा घोर अन्धकार मिलता है। सूर्य और अग्नि जहां का अन्धकार निवारण नहीं कर सकते।

यह पश्चिम दिशा जल के स्वामी वरुण को अत्यन्त प्यारी है। क्योंकि इसी स्थान पर वरुण की उत्पत्ति हुई है। भगवान् सूर्य दिन के अन्त में अपने प्रकाश का अन्त करने

हैं, इसलिये इस दिशा का नाम पश्चिम दिशा पड़ा है। इस दिशा में जल जन्तुओं के ऊपर प्रभुता और जल की रक्षा करने के निमित्त भगवान् कश्यप ने वरुण देव को सब अधिकार दे रक्खा है।

अन्धकार का नाश करने वाले चन्द्रमा इसी स्थान में जल देव के सम्पूर्ण ह्रास पीके पूर्णमासी को फिर पूर्ण रूप से उदित होता है, जिससे पश्चिम संध्या की उत्पत्ति होती है। वही अस्ताचल इस स्थान में प्रदक्षिणा करने वाले को प्रतिदिन सम्मानित करते हैं। दिन के बीत जाने पर इसी स्थान से निद्रा निकल कर जीवन काल का आधा भाग हरने के निमित्त मानों सब जीव मात्र पर आक्रमण करती है।

इस पश्चिम दिशा में क्या दिन क्या रात्रि सब समय में वायु अग्नि जल और आकाश दुःख देने वाले अपना स्पर्श त्याग देते हैं। सूर्य की गति इसी स्थान में ठंडी चाल से लौटती है और सम्पूर्ण प्रकाश सूर्य में लय हो जाता है। ११०

गरुड़ बोला हे द्विजोत्तम! यह उत्तर दिशा है, इस दिशा में सब लोग उत्तीर्ण हो के पापों से छूट कर मुक्ति पद प्राप्त करते हैं। इसलिये उत्तारण शक्ति होने से इस दिशा का नाम उत्तर दिशा हुआ है। अच्छी प्रकार से प्रसिद्ध सप्त ऋषियों का मण्डल और देवी अरुन्धती इसी स्थान पर विराजमान है।

स्वस्ति नक्षत्र का भी यहीं उदय होता है, सबही देवता इसी स्थान पर भ्रमण करते हैं। इसलिये सबसे उत्तम होने पर इस दिशा का नाम उत्तर प्रसिद्ध हुआ है।

मनसा परिक्रमा का भाव यह है कि—चहुँ ओर से छः़ओं दिशाओं से हमारी रक्षा हो और जो हमसे द्वेष करें अथवा हम किसी से द्वेप करें, तो आप न्याय के जबड़े में दोषी को पीस दें। मुझ से किसी प्राणी की बुराई न हो और न कोई मुझे दुःख पहुँचावें। इतना ही नहीं, अपितु प्रचण्ड सूर्य ताप से प्रलयङ्कार वर्षा से, भूकम्प आदि दैवी उत्पातों से, तड़ित आदि उल्कापातों से, वृक्ष लता विषैली बनस्पतियों से, किसी प्रकार हमारी हानि न हो, और न हम से किसी उद्भिज पदार्थों का व्यर्थ छेदन हो। क्यों ? इसलिये कि—

भगवान् कृष्ण गीता में कहते हैं कि—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति।

तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ॥ ६-३०

अर्थात जो मुझे सर्वत्र देखता और सब को मुझ में देखता है, वह मेरी नजर से ओझल नहीं होता। फिर कहते हैं कि—जो मनुष्य अपने जैसा प्राणीमात्र को देखता है और दुःख हो या सुख दोनों को समान भाव से समझता है, वही सन्ध्या साधक सर्व श्रेष्ठ गिना जाता है। भगवान पतञ्जली तो गीता से चढ़बढ़ कहते हैं—

अहिन्सा प्रतिष्ठायाम् तत्सनिधौ वैर त्यागः। २-३।

अहिन्सा में निश्चिलता पूर्वक स्थित होने पर उस संध्या साधक के समीप सभी प्राणियों का वैर छूट जाता है और

प्रलयकारी उल्कापातों तक से सन्ध्या साधक बाल २ बच जाता है।

सुख शांति का साम्राज्य कहां ? आनन्द का भण्डार कहां है ? पेट की जलन और हृदय धड़कन की औषधि कहां ? इन तमाम कर्षणों में कौन उथल पुथल मचा रहा है ? इन तमाम पापों का उत्तर यह मनसा परिक्रमा मन्त्र स्पष्ट शब्दों में देते हैं कि—सन्ध्या विज्ञान को न अपनाना और अन्य प्राणियों का घात करना।

बिहार और क्वेटा के प्रलयकारी भूकम्प ने यह स्पष्ट घोषित कर दिया है कि मैं उन नर राक्षसों का तहस नहस करने आया हूँ, जो गरीब जनता के लहू से बड़े २ राज प्रासादों में डकारें ले रहे थे।

Arise ? Awake, and stop not till the good is reached.

उपस्थान

मनसा परिक्रमा से उच्च अवस्था में परिपक्व हुआ साधक सर्वत्र समभाव रखने वाला और जो अपने को सब भूतों में और सब भूतों को अपने में देखता है और आत्मा को निरन्तर अनुसन्धान करता हुआ, पापरहित हुआ सन्ध्या साधक, सरलता से ब्रह्म प्राप्त रूप अनन्त सुख का अनुभव करता हुआ और जिसका मन भलीभांति शान्त हुआ है और जिसके विकार भी दमन हो गये हों, तथा जिसने गालकादि इन्द्रियों से मन को एकाग्र कर लिया हो और सम्पूर्ण रूप से पापों से निवृत्त हो कर आत्मा में ही परमात्मा को साक्षात् करता हो, वही उपस्थान को प्राप्त होता है। जहां जाकर वह भगवान् के साक्षात् दर्शन करता है और जिसकी आत्मा कह उठती है—

ॐ उद्वयं तमसस्परिस्व पश्यन्त उत्तरम् ।

देवं देवत्रा सूर्यमगमज्ज्योति रुत्तमम् । य० अ० ३५ मं० १४

अर्थ—हे परमेश्वर ! (तमसस्परिस्व:) सब अन्धकार से अलग प्रकाश स्वरूप (उत्तरं) प्रलय के पीछे सदा वर्तमान् (देवं देवत्रा) देवों में भी देव अर्थात प्रकाश करने वालों में प्रकाशक (सूर्य) चराचर के (आत्मारज्योती रुत्तमं) जो ज्ञान स्वरूप और सब से उत्तम आप को जान के (वयमुदगन्म) हम लोग सत्य से प्राप्त हुये हैं।

सब अन्धकार से पृथक् प्रकाश, प्रलय के पीछे सदा वर्तमान, देवों का भी देव, अर्थात् प्रकाश करने वालों में प्रकाशक, चर जगत् के आत्मज्ञानस्वरूप और सबसे उत्तम आपको प्राप्त होने के लिये प्रार्थना करते हैं।

अब उस स्थान को पहुंच चुके हैं, जहां के लिये इतनी तयारी की है। अपने चरित्रों को सच्चरित्रता में परिवर्तन किया घंटों आसन लगाकर एक निष्ठ हो कर उस प्रतिध्वनि को सुनने की प्रतीक्षा में था, अपने मनःस्तोपों को शान्त किया, संकुचित हृदय को उदार बनाया, तेजस्वी मस्तिष्क बनाया, कर्मचारियों को आज्ञानुवर्ति बनाया, इन्हीं के सहयोग से अपने पांचों शत्रुओं पर विजय पाई।

यह चर्मचक्षु से दिखने वाली विभूति नहीं है इसके लिये तृतीय नेत्र की जो कि साधना द्वारा प्राप्त होता है, आवश्यकता है। यह वह विभूति है, अगर आकाश में लाखों सूर्यों का एक साथ प्रकाश हो तो भी वह उस परम ज्योति स्वरूप की समानता नहीं कर सकता।

हे विश्वेश्वर! हे जगन्नियन्ता! आपके विश्वरूप का मैं दर्शन कर रहा हूं, जिसका आदि अन्त कुछ नहीं, जिस की शक्ति और प्रकाश अनन्त है। तब और क्या देख रहा हूं:—

ॐ उदुत्यं जात वेदसं देवं वहन्ति केतवः।

दृशे विश्वाय सूर्य्यम्। य०-अ०-मं०-२१

अर्थ—(उदुत्यं जातवेदसम्) जिस से अनन्त ज्ञान प्राप्त हुआ है, जो प्रकृत्यादि सब भूतों में व्याप्त हो रहा है, जो सब जगत् का उत्पादक है सो परमात्मा 'जातवेद' है (देवं) सब देवों का देव और (सूर्य) सब जीवादि जगत् का प्रकाश है, (त्यं) उस परमात्मा को (दृश विश्वाय) विश्वविद्या की प्राप्ति के लिये हम लोग उपासना करते हैं। (उद्वहन्तिकेतवः) जिसको केतव अर्थात् अनन्त ज्ञान और जगत् के पृथक रचनादि नियामक गुण उसी परमेश्वर को जानते और प्राप्त होते हैं। उस विश्व की आत्मा अन्तर्यामी परमेश्वर ही की उपासना हम करें। (इस प्रसंग को शान्ति-प्रकरण में समभिए)

जिससे अनन्त ज्ञान प्राप्त हुआ है और प्रकृत्यादि सब भूतों में जो व्याप्त हो रहा है, जो सब जगत् का उत्पादक है, सो परमेश्वर जातवेद के नाम से प्रसिद्ध ही है। सब देवों का देव और सब जीवादि जगत् का प्रकाशक है, उस परमात्मा की विश्वज्ञान प्राप्ति के लिये हम लोग प्रार्थना करते हैं जिसकी 'केतव' विश्वशक्ति ज्ञान जगत् के पृथक रचनादि नियामक गुण जानते हैं और प्राप्त होते हैं।

इन्हीं उपस्थान मन्त्रों से भगवान कृष्ण ने गीता के ग्यारहवें अध्याय में अर्जुन को विश्वरूप दिखलाया और ऐसा रूप दिखलाया कि अर्जुन जिसे देख कर थर थर कांपने लगता है, और कहता है—

मैं आप को अनेक हाथ, उदर, मुख और नेत्र सहित अनन्त रूप वाला देखता हूं, आपका अन्त नहीं है, मध्य नहीं है, न आप का आदि। हे विश्वेश्वर ! आपके विश्वरूप का मैं दर्शन कर रहा हूं *।

मुकट धारी, गदा धारी, चक्रधारी तेजपुञ्ज, सर्वत्र जगमगाती ज्योतिवाले साथही कठिनाई से देख पड़ने वाले अमाप और प्रज्वलित अग्नि अथवा सूर्य के समान सभी दिशाओं में देदीप्यमान आप को मैं देख रहा हूं। मैं आप जानने योग्य परम अक्षर रूप, इस जगत का अन्तिम आधार सनातन धर्म का अविनाशी रक्षक और सनातन रूप मानता हूं जिसका आदि मध्य अन्त नहीं है, जिसकी शक्ति अनन्त है, जिसके बाहु अनन्त हैं. जिसके चन्द्र सूर्यरूपी नेत्र हैं, जिसका मुख प्रज्वलित अग्नि समान है और जो अपने तेज से इस जगत को तपा रहा है, ऐसा मैं देख रहा हूं। ११-१६

आकाश और पृथ्वी के बीच जो अन्तर है उन सब ही दिशाओं में आप अकेले व्याप्त हो रहे हैं। हे परमात्मन यह आपका अद्भुत उग्ररूप देखकर तीनों लोक थरथराते हैं ११-१२

---

* यह एक अलंकारिक कविता है, जिसको बड़े २ विद्वानों ने स्वीकार कर लिया है और महात्मा गांधी तक इसको अलंकारिक ही मानते हैं।

यह सब देवों का संघ आप में प्रवेश कर रहा है, भयभीत हुये कितने ही हाथ जोड़ कर आपका स्तवन कर रहे हैं। महर्षि और सिद्धों का समुदाय (जगत का) कल्याण हो ऐसा कहता हुआ अनेक प्रकार से आपका यश गा रहा है। ११-२१

रुद्र, आदित्य, वसु, साध्यगण, विश्वेदेव, अश्विनिकुमार, मरुत, गरमही पीने वाले पितर लोग, गन्धर्व, यक्ष, असुर और सिद्धों का संघ, ये सभी विस्मित होकर आपको निरख रहे हैं। ११-२२

हे महाबाहो ! बहुत से मुख और आँखों वाला अनेक हाथ जंघा और पैर वाला, अनेक पेट वाला, अनेक दाढ़ों के कारण विकराल दिखने वाला विशाल रूप देखकर संसार व्याकुल हो गया है और मैं व्याकुल हो रहा हूं ११-२३

आकाश स्पर्श करनेवाले, जगमगाते, अनेक दांतों से खुले मुख वाले और विशाल तेजस्वी नेत्र वाले, आपको देखकर हे विष्णो ! मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है, मैं धैर्य या शान्ति नहीं रख सकता। ११-२४

प्रलय काल के अग्नि के समान और विकराल दाढ़ों वाला आपका मुख देखकर न मुझे दिशायें जान पड़ती हैं, न शान्ति मिलती है। हे देवेश ! हे जगन्निवास ! प्रसन्न होइये। ११-२५

जहां आत्मज्ञान वाला ही पहुंच सकता है, मैंने भी उस कठिन यात्रा के लिये ब्रह्माण्ड की दौड़ धूप लगाई।

लेकिन मन अब भी अस्थिर है वह प्राणाधार, वह जीवन का एक मात्र सहारा, वह निर्मल ज्योति:स्वरूप, वह अलौकिक सुगन्ध, वह कोकिल कण्ठ, वह हृदयेश्वर, जिसके बिना हृदय जहां का तहां ही रह जाता है। इस अथाह सागर से पार लगाने वाले सिवाय आपके कौन मेरा बिनती को सुनेगा— इस प्रकार भक्तिरस में डूबा भक्त ऊषा—समय में मस्त हो गाने लगता है—

भैरवी

डोलती नाव प्रखर है धार !
सम्भालो जीवन खेवन हार !

गिर फिर फिर, प्रबलता तरङ्गों में गिरती है—
डोले पग जलपर, डग मग, डग मग, फिरता है—
टूट गई पतवार । जीवन०

भयभीत हूँ तनमय, थरथर कांपत तन मय तन—
छन छन में बढ़तो हुई जाती है, अति शयना,
पारा वार अपार । जीवन खेवन हार

गाने के बाद वह नास्तिक और प्रमादी पुरुषों से कहता है यह देखिये कैसा उत्सव ! यह मनोहर पताकाओं से सजी सजाई नाट्यशाला गली, ऊंचे, नीचे, ऊपर, कोई स्थान ऐसा नहीं, जहाँ उस नाट्यकार ने न सजाया हो। न समझो तो आपकी नासमझी, न देख सको तो फूटी आंख का कसूर ! वह तारों की चमचमाती माला किस का हार ! यह लहलहाना

समुद्र किसकी शोभा ! वह शुष्क रेगिस्तान ! यह स्वेत वस्त्र ओढ़े हिमालय पर्वत, यह लोक लोकान्तर किसकी आज्ञा सुनने की प्रतीक्षा में हैं !

ॐ चित्रंदेवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्राद्यावा पृथ्वी अन्तरिक्ष ꣳ सूर्य आत्माजगतस्तस्थुषश्चस्वाहा

य० अ० ७ मं० ४२

अर्थ—चित्रंदेवाना०। (सर्वआत्मा) प्राणी और जड़ जगत् की जो आत्मा अर्थात आधार है उसको सूर्य कहते हैं। (आप्राद्यावा०) जो सूर्य और अन्य सब लोकों को बनाके, धारण और रक्षण करने वाला है (चक्षुर्मित्रस्य०) जो मित्र और राग द्वेष रहित मनुष्य तथा सूर्यलोक और प्राण का चक्षुप्रकाश करने वाला है. (वरुणस्याग्नेः) सब उत्तम कामों में जो वर्तमान मनुष्य प्राण अपान और अग्नि का प्रकाश करने वाला है, (चित्रं देवाना०) जो अद्भुत स्वरूप विद्वानों के हृदय में सदा प्रकाशित रहता है, (अनीकं) जो सकल मनुष्यों के सब दुःख नाश करने के लिये परम उत्तम बल है, वह परमेश्वर (उदगाद्) हमारे हृदयों में यथावत् प्रकाशित रहे।

प्राणी आर जड़ जगत का जो आधार है, उसे सूर्य कहते हैं। जो सूर्य आर अन्य सब लोगों को बनाके धारण और रक्षण करने वाला है। जो मित्र और रागद्वेष रहित मनुष्य तथा सूर्य लोक और प्राण को चक्षु प्रकाश

देने वाला है, सब उत्तम कर्मों को, जो वर्तमान, प्राण, अपान और अग्नि का प्रकाश करने वाला है, जो अद्भुत स्वरूप योगियों के हृदय में सदा प्रकाशित रहता है, जो सकल मनुष्यों के सब दुःखों के नाश करने के लिये परमोत्तम बल है, वह परमात्मा हमारे हृदय में यथावत प्रकाशित रहे।

"चित्रम् !" अहा जीवन की सुन्दरता में जीवन की बसन्त ऋतु में जिसका दूसरा नाम ब्राह्ममुहूर्त्त है, ध्यान परायण योगी के लिये यह कितना सुन्दर वेद मन्त्र है। जड़ता का विनाश हुआ, और चैतन्यता का राज्याभिषेक। ऐसे अत्यन्त हर्षप्रद मंगल अवसर को कौन अभागा प्राण प्रमुदित हो कर न मनायेगा और 'चित्रम्' के वाद से दशों दिशाओं को निनादित कर समस्त प्राणी वृन्द के साथ एक साथ हो कर इस बसन्तोत्सव के आनन्दोल्लास से अपने को वञ्चित रक्खेगा। प्रत्येक प्राणी ऐसे समय में व्यक्त अथवा अव्यक्तस्वरों में कह उठता है—"चित्रम् !"। चेतना स्वप्रग्रस्त प्राणी तमोगुण को त्याग कर अकस्मात रजोगुण प्रधान जीवन संग्राम क्षेत्र में प्रयोग करने के लिये हठात् बाधित किये जाने पर अत्यन्त आश्चर्य चकित हो जाता है और व्यक्त अथवा भाषा में बोल उठता है, 'चित्रम्' यह विचित्रता कैसी ?

भूत मात्र का आदि स्रोत कहां ? जगमगाते सूर्य में किसका प्रकाश ? चन्द्र में यह शीतलता किसकी ? यह शीघ्रगामी पवन किसके द्वारा चल रहा है ? यह प्रलय कारक रुद्ररूप

कौन ? इस सृष्टि ब्रह्माण्ड का आदि अन्त भी हो ? यह अध्यात्म कहां से प्राप्त हुई ? यह भयंकर विधान करने वाला कौन ?

हे वास्तविक तत्व से भटकती हुई आंख ! उस अदृश्य दृश्य को देख ! हे सांसारिक स्वरों पर मोहित होने वाले श्रोत्र ! उस श्रुति को सुन ! अरी अन्ड बन्ड बकने वाली जिह्वे ! आत्मा की पूंजी का नाश न कर ! उस अव्यक्त तत्व "ॐ" का गुण गान कर ।

यही सारा विज्ञान है, सन्ध्या साधक आश्चर्य चकित होकर कह उठता है, "चित्रम देवानाम"

यह तो कल्प कल्पान्तरों का सुयोग अवसर प्राप्त होकर यह मानुषी जन्म उस अव्यक्त तत्व का दर्शन करने को है कैसे सन्तोष करलूं कि यह पर्याप्त हो गया ? अपितु इसी जन्म सम्पूर्ण आयुपर्यन्त एक रस रहता हुआ आपकी गोद में निवास करूं ।

ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतं ॐ शृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम: शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।

य० अ० ३६ मं० २४

अर्थ—(तच्चक्षुर्देवहितं०) जो ब्रह्म सब का द्रष्टा धार्मिक विद्वानों का परमहितकारक तथा (पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत) सृष्टि

के पूर्व पश्चात और मध्य में सत्य स्वरूप से वर्तमान रहता है और सब जगत का करने वाला है (पश्येम शरदः शतम्) उसी ब्रह्म को हम लोग सौ वर्ष पर्यन्त देखें (जीवेम शरदः शतम्) जीवें (शृणुयाम शरदः शतम) सुनें (प्रब्रवाम श०) उसी ब्रह्म का उपदेश करें। (अदीनाः स्याम०) और उनकी कृपा से किसी के आधीन न रहें (भूयश्च शरदः शतात्) उसी परमेश्वर की आज्ञा पालन और कृपा से सौ वर्षों से भी उपरान्त हम लोग देखें, जीवें सुनें, सुनावें, और स्वतन्त्र रहें अर्थात् आरोग्य शरीर दृढ़ इन्द्रिय, शुद्ध मन और आनन्द सहित हमारा सदा रहे। यही एक परमेश्वर सब मनुष्यों के उपास्यदेव हैं। इस लिये प्रेम में अत्यन्त मग्न हो के अपने आत्मा और मन को परमेश्वर में जोड़ कर इन मन्त्रों को मनन करते हुये परमात्मा की प्रार्थना करें।

मन्त्र शक्ति

—:*:—

मन्त्र क्या है ? इसकी आलोचना की जाती है—मन्त्र वाक्य मात्र अर्थयुक्त शब्द है, मन्त्र उच्चारित करने पर शब्द उच्चारित होता है। वाक्य स्फुरण युक्त शब्द है। शब्द निःसरण का कारण वाक्‌मन्त्र है, कंठनाली के मुख मे यह यन्त्र है, यह यन्त्र मांसपेशी और तारों की तरह बना है। फुप्फुस से वायु उत्पन्न हो कर कंठ नाली के मुख पर आता है, पीछे वाक्‌यन्त्र शब्द होता है और इससे निकला शब्द हमारी समझ में साफ २ आ जाता है। सब लोगों का वह यन्त्र सम्पूर्ण नहीं होता, अनेकों के वाक्‌यन्त्र में दोष भी होते हैं। इसी से कोई २ मनुष्य स की जगह श और त की जगह ट और थ की जगह त बोलते हैं, और कोई स को द कहते हैं। शुद्ध बोलने का प्रयत्न सब ही करते हैं परन्तु सौभाग्य किन्हीं को प्राप्त होता है।

शब्दविज्ञान के अन्दर ज्ञानविज्ञान आता है, अर्थ युक्त शब्दों को एकत्रित करने से वाक्य बनते हैं। शब्द और वाक्य का निकट सम्बन्ध है, इस सम्बन्ध को वाच्य वाचक सम्बन्ध कहते हैं। पद दो प्रकार के होते हैं जिस पद का शब्द के साथ स्वाभाविक सम्बन्ध होता है। उसको स्वाभाविकसम्बन्ध कहते हैं, जिस पद का स्वाभाविक अर्थ नहीं घटता है, उसको अस्वाभाविकपद कहते हैं।

स्वाभाविक पद घटित जितनी भाषायें हैं, वे सब एक हैं भाषा तत्वविद पंडित कहते हैं, कि सब भाषायें परस्पर मिली हुई हैं, यह बात कहां तक सत्य है, इसे विचारना चाहिये। पशुपक्षियों को छोड़ कर केवल मनुष्यजाति को पहले ले लो। एक मनुष्य जाति में ही कितने प्रकार के मनुष्य होते हैं। विचार कर देखो पृथ्वी पर कितने देश हैं और कितनी जातियां व कितनी भाषायें हैं।

सब ही भाषाओं का मूल एक है। संस्कृत 'देवनगरी से प्रादुर्भूत हुई है, इसलिये उसको 'देवनागरी' कहते हैं। अँग्रेजी, फारसी, अरबी, ग्रीक, लेटिन, चीनी नाना प्रकार की भाषायें हैं। क्या उनमें सभ्यता भी है? हां उनमें सभ्यता भी पाई जाती है। इस का प्रमाण यह है, कि भाषाओं में आकारवत्वैषम्य होने पर भी उनका मूल भी दिखता है, और शब्दों का उत्पत्तिस्थल भी एक ही है, मूल एक है, प्रकृति एक है। भाव व्यक्त करने के लिये भाषा चाहिये। वाक् यन्त्र द्वारा शब्द उच्चारित भावों से होता है और उच्चारित भावों से भाव व्यक्त होते हैं। चक्षु, हाथ, शिर के हिलाने से भी भाव व्यक्त होते हैं। जिन्होंने बकरे का बलिदान देखा है, उसका आर्तनाद सुनकर उस से व्यक्त होते हैं। जिन्होंने मैंढ़ों की लड़ाई देखी होगी उन्हें मालूम हो गया होगा कि मेढ़ क्रोध के

आवेश में भर ऐसी बोली बोलते हैं। किसी द्रव्य को देखने मात्र से हमारी दर्शनेन्द्रिय में धक्का लगता है, स्नायुओं में हो कर वेग मस्तिष्क में जाता है, जब कोई प्रवाह बाहिर से मस्तिष्क में जाता है, तब भीतर से भी एक प्रवाह निकलता है, आते समय वह फुप्फुस में वायु निताड़ित करता है, वही वाक्य फुप्फुसों में से निकल कर वाग्यन्त्र द्वारा शब्दरूप में प्रगट होता है।

सब पदार्थों में गूढ़ शक्ति विद्यमान है। वह शक्ति उससे निकल कर बिजली की तरह भीतर घुसती है और भीतर जा कर वही शक्ति लौट कर बाहर वाले पदार्थ की छिपी शक्ति में आ मिलती है। इसी से द्रव्य, द्रव्य की शक्ति का वाचक होता है। जब देख कर या उसे स्पर्श करके जो शक्ति हमारे शरीर में काम करती है, वह कार्य हमारे भीतर स्नायुमण्डली में जा कर टिक जाता है। द्रव्य में शक्ति है, द्रव्य वाचक शब्द उसी शक्ति का फल है। शब्दों में भी शक्ति है, वाक्य शक्ति सम्पन्न और उत्पादक है। जब तुम्हें कोई गाली देता है, तब तुम्हें क्रोध क्यों आता है? क्यों मोटी २ बातें सुन कर तुम प्रसन्न होते हो? अतएव बातचीत वाक्यशक्ति को निर्जीव या जड़वत् मत समझो। क्योंकि वाक्यों द्वारा अनेक रोगों की चिकित्सा भी होती है।

मन्त्र—अर्थयुक्त शब्द रचित वाक्य है, मंत्र जपने से फल मिलता है। पहले कहा जा चुका है कि शब्द में शक्ति है, सुतरां मन्त्र में भी शक्ति है। जो सिद्ध पुरुष हैं,

वह मन्त्र की शक्ति को प्रगट कर सकते हैं। मन्त्र उच्चारण करने से शक्ति क्रिया सम्पन्न होती है और क्रिया के सम्मुन्नत होने पर क्रिया का फल मिलता है।

किसी भाषा में भी मन्त्र सिद्धि हो सकती है, लेकिन भाव सब के एकही होने चाहियें। एकही भाव के व्यक्त होने में वह भाव स्तर स्तर में व्याप्त हो जाते हैं फिर संसार में किसी का कोई शत्रुही नहीं रह सकता है। सर्वत्र एकही भाव विराजमान है।

'ॐ'——

यह एक मन्त्र है, इस में अ+उ+म और ँ नाद् विन्दु है। प्रणवोच्चार का अधिकारो केवल ब्राह्मण है! प्रणव का अर्थ कि-प्राण को नीचे से उठाकर उच्च स्थान पर लेजाना।

साधक श्वास प्रश्वास में ॐ पर विन्ध जाता है। 'अ' मूलाधार से स्वर आरम्भ हा कर 'उ' मणिपुर चक्र में तड़ित पैदा करता हुआ 'म' हृदय में सम्पूर्ण रूप से विकसित हो कर 'ँ' कपाल पिण्ड जहां प्रकाशछिद्र ब्रह्मरन्ध्र में लय हो जाते हैं। प्रणव के उच्चारण से शक्ति उद्रित होती है। उस शक्ति का प्रभाव मूलाधार से निकल कर ब्रह्मरन्ध्र में पहुंचता है, बीचमें अनेक चक्र या घाट होते हैं, वह शक्ति प्रवाह प्रत्येक चक्र या घाट पर ठहर कर आगे को बढ़ता है। इसी से प्रत्येक में विजुलो की शक्ति उत्पन्न होती है और शक्ति का विकास हो कर मस्तिष्क में केन्द्र बनता है।



प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वै वेध्यं सर्वस्तन्मयो भवेत् ॥

पृष्ठ १८७ के सामने ।

Bharat Gan Hiteshi Press Delhi

योगी श्वास प्रश्वास में अपनी मन की सम्पूर्ण वृत्ति 'ओ३म्' पर लगा कर उसी में लय हो जाता है—

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमत्तेन वै वेध्यं सर्वस्तन्मयो भवेत् ॥

प्रणव परमेश्वर शब्द ही उस ब्रह्म रूपी लक्ष्य के बींधने के लिये मानो धनुष है, जीवात्मा मानो बाण है और वही ब्रह्म परमात्मा मानो निशाना है । उस ब्रह्मरूपी लक्ष्य को अप्रमादी हो कर अर्थात् चित्त की सम्पूर्ण वृत्तियों को विषयों से हटा कर केवल परमात्मा के ध्यान में ठहरा कर जीवात्मा स्वयं लक्ष्य में लगे हुये बाण समान और सदाचार वृत्ति वाला हो कर बींधे । भूलकर भी अपने ध्यान को विचलित न होने दे ।

गुरुदेव उपर्युक्त मंत्र शिष्य को देता है । जैसे चतुर वैद्य रोगी का रोग पहचान कर रोग निर्णय करता है, वैसे ही सद्गुरु शिष्य को निर्वाचन करता है और उपर्युक्त महामंत्र शिष्य को प्रदान करता है । गुरु का दायित्व बड़ा भयंकर है । शिष्य का सारा भार गुरु के ऊपर आ पड़ता है । गुरु यदि भ्रम में पड़ जाय तो शिष्य का अनिष्ट हो सकता है हमारी प्रकृति और बल के अनुरूप से ही मन्त्र मिलना चाहिये, यदि गुरु ही हम विपरीत मंत्र दें तो हमारे चक्र में विरोधी तड़ित उत्पन्न होगा । इससे हमारे शरीर में उत्कट रोगोत्पत्ति की संभावना है । गुरु के दोष से शिष्य पागल तक हो जाते हैं । विरोधी मन्त्र के जपने से कोई २ यक्ष्मा

की बीमारी से भी पीड़ित होते देखे गये हैं और कोई २ तो मर भी जाते हैं।

इस विश्व रूपी वृक्ष का मूल प्रणव है, यह विश्व जगत प्रणव से उत्पन्न हुआ है, प्रणव ही से सारा प्रपंच प्रादुर्भूत हुआ है, इस चराचर विश्व में प्रणव ही का पूरा विकास है अर्थात ओंकार प्रयुक्त होकर जिस प्रकार मस्तिष्क में प्रति गमन करता है, वैसे ही योगी को भी प्रत्येक अक्षर में ओंकार भासता है। 'ओं' अक्षर ही में तीनों वेद तीनों अग्नि, तीन लोक, ब्रह्म विष्णु महेश तीनों रूप हैं। परमार्थतः इसके साथ तीन मात्रा जानो। जो साधक इसमें नियुक्त होता है, वह इसी में लय हो जाता है। इस प्रकार इस ओंकार सिद्ध अक्षर स्वरूप परब्रह्म को सम्मत रूप से जान कर उसके ध्यान में जो प्रयुक्त होता है वह संसारचक्र और विविध बन्धनों को काट कर उस परमात्मा स्वरूप ब्रह्म में लय भी हो जाता है।

ओ३म्—अकार उकार मकार के योग से यह अक्षर सिद्ध है—

अ—से विराट, जो विविध जगत का उत्पादक प्रकाश करने वाला (अग्निः) जो ज्ञान स्वरूप सर्वत्र व्याप्त हो रहा है (विश्वः) जिसमें सब जगत प्रवेश कर रहा है, जो सर्वत्र प्रविष्ट है।

उ—(हिरण्यगर्भः) जिसके गर्भ में प्रकाश करने वाले सूर्यादि लोक हैं और जो प्रकाश करने वाले सूर्यादि लोकों

का उत्पन्न करने वाला है। ज्योति के नाम हिरण्य, अमृत और कीर्ति हैं। (वायुः) जो अनन्त बल वाला और सब जगत का धारण करने वाला है। (तेजः) जो प्रकाश स्वरूप और जगत का प्रकाशक है।

म्—ईश्वर अर्थात् महान् शक्तिशाली, आदित्य, अखण्ड, प्राज्ञ अर्थात् ज्ञानवान्।

ॐ भूर्भुवः स्वः

अ—से वैश्वानर, उ—से तैजस, म्—प्राज्ञ अर्थात् ज्ञान

परब्रह्म	"ॐ"	
ईश्वर	म्"	
गायत्री	"उ"	
प्रकृति	"अ"	
पराकला	दैवीप्रकृति मूलप्रकृति	} अर्धमात्रा
पश्यन्तिशक्ति	कारणशरीर सूत्रात्मा	} स्वः मकार
मध्यमाविन्दु	सूक्ष्म शरीर हिरण्य गर्भ	} भुवः उकार
वैखरी	स्थूल शरीर वैश्वानर	} भूः अकार

(१) स्थूल शरीर के उपादान ! इन्द्रिय, मन, सूत्रात्मा—(अन्तिम उपाधि)

(२) सूक्ष्म शरीर के उपादान ! इन्द्रिय, मन, सूत्रात्मा।

(३) कारण देह के उपादान ! सूक्ष्म, इन्द्रिय मन सूत्रात्मा (उज्ज्वल विमूल उपाधि) वासना, कामना।

भू भुर्वः स्वः यह तीन लोक हैं इन्हीं तीनों लोकों में जीव के आने की गति है। कारण शरीर को विशेष उन्नति होने पर वह तुर्य्यावस्था को प्राप्त होता है। उस समय दैवी शक्ति पूर्णज्योति से जीव में अवभासित होती है। उसको प्रज्ञा अधियज्ञ में उन्नति कर जाती है। तब जीव जीवन मुक्त हो जाता है, फिर लौट कर नहीं आता है। किन्तु विश्वप्रेम मुग्ध उदारवेत्ता कोई २ महात्मा मुक्त होकर भी जीव के दुःख भार को ग्रहण करने के लिये तमसाच्छादित जीवों के उद्धारार्थ इच्छा पूर्वक फिर इस कार्य में जन्म लेते हैं। धन्य मातु वसुमति ! हे महामान्य पुरुष तुमको अनेक प्रणाम।

भूः—भूरिति वै प्राणः—जो सब जगत का जीने का हेतु और प्राण से भी प्रिय।

भुवः—भुवः परित्ययामः। जो मुक्ति की इच्छा करने वाले मुक्तों और अपने सेवक धर्मात्माओं को सब दुःख से अलग करके सदा सुख में रहता है।

स्वः—स्वर्रति—जो सब जगत में व्यापक होके सब में नियम रखता है और सबका निवास स्थान।

भूर्भुवः स्वः—जो प्राण हम अन्दर लेते हैं, जो श्वास बाहर छोड़ते हैं, जो प्राण सारे शरीर में व्याप्त है।

भूर्भुवः स्वः—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, और इन तीनों विद्याओं से युक्त अथर्ववेद।

भूर्भुवः स्वः—सत, रज, तम, ब्रह्मा, विष्णु महेश, ज्ञान कर्म उपासना। ब्रह्म, जीव, प्रकृति। वात, पित्त, कफ।

तत्सवितुर्वरेण्यंभर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् (सवितुः) जो सब जगत का उत्पन्न करने वाला (देवस्य) जो सब के आत्माओं का प्रकाश और सब सुखों का देने वाला (वरेण्यं) जो अत्यन्त ग्रहण करने योग्य है, 'भर्गः' जो शुद्ध विज्ञान स्वरूप है। (तत्) उसको (धीमहि) हम लोग सदा प्रेम भक्ति से निश्चय से धारण करें, किस लिये कि (यः) जो पूर्वोक्त सविता नाम देव है, वह (नः) हमारी (धियः) बुद्धियों को (प्रचोदयात्) प्रेरणा करे।

जिस परमब्रह्म परमात्मा का मुख्य सर्वोत्तम नाम ओ३म्कार है, जो सम्पूर्ण जन्तुओं का प्राण दाता तथा प्राणों से भी प्रिय है, जो सज्जनों को दुःख दूर करके नित्यानन्द में रखता है जो सर्वज्ञ सर्व व्यापि सर्व शक्तिमान है, जो अनन्त ब्रह्माण्ड तथा उसके अन्तर्गत सम्पूर्ण वस्तुओं का आदि कारण पालक, लयकारक है, जो अत्यन्त ग्रहण करने योग्य है, उस सच्चिदानन्द स्वरूप, निरञ्जन, निराकार, निराधार, निर्विकार अधमोद्धारक, धर्मार्थ काम मोक्ष प्रद तेज का हम ध्यान करते हैं, कि वह हमारी बुद्धि को दुराचारों से हटाकर ब्रह्म विज्ञान में स्थित करे।

गायत्री वा इद ꣳ सर्वं भूतं यदकिञ्चन।
वाग्वे गायत्री वाग्वा इद ꣳ सर्वं भूतम् ॥

अर्थात् चारों वेदों में जो छन्द है, इस छन्द को प्रधानता दी गई है। क्योंकि इसी से ब्रह्म की प्रधानता में स्तुति की गई है, इस कारण ब्रह्म साधना में प्रधानता होने के कारण इस ऋचा में महात्म्य वर्णन किया गया है, कि—गायत्री ही सब भूत है, स्थावर, जंगम जो जगत् है, सब गायत्री है। क्योंकि इसी एक मन्त्र से ज्ञानदीप्त का प्रकाश हो कर सर्व पदार्थों का बोध होता है और प्रकृति पर विजय किया जा सकता है। गायत्री ही वाणी है, गायत्री ही इन सब भूतों की गात्री है। गायत्री को पृथ्वी सदृश वर्णन किया गया है। गायत्री प्रतिपाद्य ब्रह्म का महत्व इतना है कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उसके एक देश में है, और वह सर्वत्र परिपूर्ण है। अर्थात् भूतजगत उसके एक स्थानीय है और तीन पाद अमृत अविनाशी स्वरूप है। इस प्रकार एक मन भावना करके प्रकृति प्रदेश में जा कर उसके निगूढ़ रहस्य को प्राप्त करता है। कर्म, उपासना, ज्ञान इन तीनों का समावेश ऋषियों ने सन्ध्या विधि में निरूपण किया है, फिर इधर उधर भटकने की क्या आवश्यकता रहजाती है? इस लिये प्राणप्रण साधन द्वारा गायत्री मन्त्र अर्थ सहित पूर्ण मनोबल से अमरत्व प्राप्त करे। अर्थात् "ऋतंज्ञानान्न मुक्तिः", अर्थात् "धियो यो नः प्रचोदयात्"।

समर्पणम्

ॐ देवा गातु विदोगातु वित्वा पितृ मनसस्पत;
इमन्देवं यज्ञ ७ं स्वाहा व्यतिधाः ।

ॐ नमः शम्भवाय च मयो भवाय च नमः शङ्कराय च
मयस्कराय च नमः शिवाय च शिवतराय च ।

अनेन कर्मणा परमात्मा प्रीयतां न मम ।



आत्म संयम

—:*:—

संसार क्षेत्र में विजय प्राप्त करने के लिये आत्म संयम की नितान्त आवश्यकता है। संयम शक्ति का यथोचित प्रयोग करना सीखना चाहिये। यह कार्य कष्ट साध्य है और बहुत समय में होता है, शीघ्रता से नहीं होता है, किन्तु बिना युद्ध किये विजय भी प्राप्त नहीं हो सकती: लेकिन जब विजय प्राप्त की जाती है, तो स्थायी सुख, और अपरिवर्तनीय हर्ष होता है। इस के लिये कठिन एकाग्रता की आवश्यकता है। आत्म संयमी धैर्य छोड़ना पाप समझते हैं, वह प्रकृति के नियम पर चलते हैं, प्रकृति में उतावली आवेश नाम को भी नहीं पाई जाती है। अध्यात्मवादी हमेशा देवताओं का अनुसरण करते हैं। ऐसे मनुष्यों को पग पग पर सौन्दर्य, पवित्रता, सुख, शान्ति और मौलिकता मिलती है। आत्मसंयम में कितनी अपरिमित शक्ति भरी पड़ी है, शान्ति में कितना बल है, जिसकी तुलना आत्म-संयमी कर सकता है।

आत्मसंयम के जीवन में विजय है, इसका सुख अपरिमित है। अपनी बढ़ती हुई शक्ति पर ईश्वरीय ज्ञान का आभास होता जाता है। सफलता इसके जीवन को अगुवा बनती जाती है, जिसको आलसी और मूर्ख नहीं समझ सकता है। आत्मसंयम के मार्ग को तै करना मानो तमाम

बुराइयों को कुचल डालना है। इस सृष्टि पर देवताओं की भांति दृष्टिपात करता हुआ अन्त में ब्रह्मलीन हो जाता है।

अनेक प्रणाम हैं, उन मातापिताओं को जो अपने सुकुमार बच्चों को बालकपन से ही आत्मसंयम की शिक्षा देते हैं और उन्हें संसार क्षेत्र में विजयप्राप्ति के लिये तैयार करते हैं। आठ पहरों में एक घड़ी भी तुम अध्यात्म विषय को लेकर अगर मननशील बनो तो तुम्हारी बुद्धि में सारे सिद्धान्त प्रतिबिम्बित हो जायेंगे, हृदय में जम जायेंगे, नस नस में समा जायेंगे। इतना होने पर ईश्वरीय-स्वरूप की पूर्ण पहिचान हो जायगी। परन्तु जिस प्रकार आजन्म प्रत्येक दिन रात्रि में केवल एक घड़ी का अभ्यास मानुषीजन्म को सफल करता है, उसी प्रकार अनेक जन्मों के सुसंस्कारों से, ध्यान व उपासना की सहायता से मोक्ष प्राप्त हो सकतो है। उपासना का वेग बढ़ा कर थोड़ा समय भी निश्चित किया जा सकता है।

ध्यान व समाधि साधन विधि।

ठीक वैज्ञानिक उपायों से इस आत्मसंयम ज्ञानातीत अवस्था को प्राप्त करने के लिये हम तुम्हें सन्ध्या योग के विषय में जिन उपदेशों को दे रहे हैं, उन प्रत्येक साधनों के भीतर साधक को जाना होगा। पहले प्रकरण में प्रत्याहार (प्रणव या गायत्री मन्त्र) के विषय में कहा गया है, अब इससे आगे ध्यान के विषय में आलोचना करेंगे।

शरीर के भीतर अथवा बाहर किसी एक स्थान में मन कुछ क्षण तक स्थिर रहने की शक्ति प्राप्त कर लेता है, तब वह क्रमशः एक तरफ तेल की धार की तरह चलता रहेगा। जब ध्यानरूपी उन्नति को प्राप्त हो जावे कि अपने बाहरी हिस्से से विजय हो कर केवल आभ्यन्तर भाग की ओर अर्थात् उसकी प्राप्ति की ओर ही सम्पूर्ण रूप से मन चलने लगे, तब वह अवस्था ही समाधि अवस्था कही जा सकती है। धारणा, ध्यान, समाधि इन तीनों को एकत्रित कर देने को ही 'संयम' कहते हैं। अर्थात् मन यदि किसी वस्तु के ऊपर कुछ क्षण के लिये एकाग्र हो सके, उसके पश्चात् यदि वह इस एकाग्रता में अधिक क्षण तक ठहर सके; फिर हर प्रकार क्रमशः इस एकाग्रता द्वारा मन केवल एक वस्तु आभ्यन्तर प्रदेश में अर्थात् जिस आन्तरिक कारण से वाह्यवस्तु की अनुभूति प्राप्त हुई, उसके ऊपर मन एकाग्र (संलग्न) रख सके तो इस प्रकार की शक्ति सम्पन्न मनुष्य को कौनसी ऐसी बात है जो असाध्य हो? यह ही नहीं, तब तो सारी प्रकृति उसके आधीन हो जाती है।

मन की जितनी प्रकार की अवस्थायें हैं, उनमें से यह ध्यानावस्था ही जीवन की सबसे उच्चतम अवस्था है जबतक जीव की वासना रहती है, तब तक जीव किसी तरह से भी सुखी नहीं रह सकता है। केवल जब कोई व्यक्ति सम्पूर्ण वस्तुओं को इस ध्यानावस्था से अर्थात् साक्षीभूत से पर्यालोचन कर सके, तब ही उसको प्राकृतिक सुख इन्द्रियों के ऊपर निर्भर करता है। दूसरे प्राणियों में सुख इन्द्रियों

के ऊपर निर्भर करता है, परन्तु मनुष्य को अपनी विशेष बुद्धि विद्या और भगवान के आध्यात्मिक ध्यान में सुख हुआ करता है। जिसका ऊपर बताये अनुसार ध्यानावस्था प्राप्त हुई हो, उसको ही यथार्थ में यह संसार अति सुन्दर रूप में सुखधाम प्रतीत होता है। जैसा कि सन्ध्या की शान्ति में उल्लेख होगा। जिनके मन में किसी प्रकार की वासना नहीं होती है, वह सब विषयों से मुक्त रहते है। उनकी दृष्टि में प्रकृति के प्रकार का परिवर्तन केवल एक महान् सौन्दर्य और महान् भाव की छविमात्र है।

ध्यान में इन तत्वों को जानना आवश्यक है। जैसे मान लो हमने सुना, इसमें क्या हुआ? पहले बाहर से एक तरफ की कम्पन आया, इसके बाद स्नायुओं की गति द्वारा वह मन में पहुंचा, फिर मन मे एक प्रकार की प्रतिक्रिया हुई और उसके साथ २ ही हमें वाह्यवस्तु का ज्ञान प्राप्त हुआ, यह वाह्यवस्तु ही आकाशीय कम्पन द्वारा मानसिक प्रतिक्रिया तक भिन्न २ परिवर्तनों का कारण होता है। योग शास्त्र में इन तीनों को शब्द, और ज्ञान कहते हैं। शारीरिक तत्व शास्त्र की भाषा में कहना हो तो इन को क्रमशः आकाशीय कम्पन, स्नायु व मस्तिष्क, मध्यस्थगति, मानसिक प्रतिक्रिया इन नामों से कहा जा सकता है। यह तीनों प्रतिक्रियायें बिलकुल पृथक २ होने पर भी साधारण मनुष्य में वह इस तरह मिली होती हैं कि इनका परस्पर का भेद जानना बहुत ही मुशकिल है। वास्तव में हम इस समय इन तीनों में से किसी एक भी बात को नहीं जानते बल्कि केवल इन तीनों प्रतिक्रियाओं का सम्मिलितस्वरूप बाह्य

वस्तु को अनुभव करते हैं, तब प्रत्येक अनुभव क्रियाओं में ही ये तीनों बातें रहा करती हैं। तब हम उन्हें चेष्टा करने पर पृथक् २ क्यों न कर सकेंगे?

इसके पहले प्रकरणों में बतलाये हुये अभ्यासों द्वारा मन जब दृढ़ व स्थिर हो जावे, और सूक्ष्म अनुभवशक्ति का विकास हो जाय, तब मन को ध्यान में नियुक्त करना चाहिये। अर्थात् जिसको तुम सन्ध्या कहते हो, वह केवल स्थूल अनुभूतिमात्र है जैसे कि प्रथम किसी स्थूलवस्तु में ध्यान जमाना चाहिये। इस प्रकार विषयशून्य क्रमशः सूक्ष्मध्यान (निर्विकल्प) में अधिकार हो जाता है। इसको स्पष्ट करने के लिये इस प्रकार कहा जा सकता है, कि जैसे मन को पहली अनुभूति के बाहरी कारण अर्थात् विषय में, फिर स्नायुमण्डल की मध्यस्थित गति में, इसके पश्चात् उसकी उत्पन्न प्रतिक्रियाओं को अनुभव करने के लिये प्रयोग करना चाहिये। जब अनुभव बाहरी वस्तुओं, अर्थात् विषयों को अन्यान्य विषयों से अलग कर के समझ में आजायेंगे तब ही सम्पूर्ण सूक्ष्मरूप जानने की शक्ति आ जायगी। जब भीतरी गतियों के अन्यान्य सब विषयों को पृथक् करके जाना जायगा, तब ही मानसिक विचारों को साधक के अपने ही मनमें हों अथवा दूसरे के मन में हों, जान सकेंगे। यहां तक कि भौतिक शक्तियों के रूप में परिणित होने के पहले ही वह उसको मालूम हो जायेंगे और जब केवल मानसिक हलचलों को जान सकेंगे, तब सन्ध्यासाधक सब पदार्थों का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे। क्योंकि जो कुछ भी वस्तुयें हमें प्रत्यक्ष

दृष्टि गोचर होती हैं, वे यहां तक कि सारी चित्तवृत्ति तक उसी मानसिक प्रतिक्रिया का फल हुआ करती हैं। इस प्रकार की अवस्था प्राप्त होने पर वह अपने मन की सीमा को भी जान सकेगा। उस समय मन उस के बस में हो जायगा, संध्या में उस समय अलौकिक शक्ति आ विराजती है। परन्तु वह इन सब शक्तियों की प्राप्ति में प्रलोभित हो जायगा तो उसका आगे का रास्ता रुक जायगा। भोगों के पीछे दौड़ने से जैसे अनर्थ हुआ करते हैं, उसी तरह संध्यासाधक भी इन अलौकिक सिद्धियों के फलभोग में प्रलुब्ध हो कर अपनी विशेष क्षति कर बैठता है। किन्तु यदि योगी इन अलौकिक शक्तियों का बिलकुल परित्याग कर सके, तो वह मनरूप समुद्र में स्थित सम्पूर्ण वृत्तिप्रवाहों को रोक कर अन्तलक्ष्य तक पहुँच सकेगा। तब उसके अन्त-र्हृदय में आत्मदेव की यथार्थ महिमा प्रकाशित हो जायगी, उस समय उसके मनको नाना प्रकार की चंचलता व विविध प्रकार की शारीरिक गतियां कुछ भी विचलित न कर सकेंगी। इस समय ही आत्मा अपनी ज्ञानज्योति से प्रकाशित होगी उस समय संध्या साधक देख पावेगा कि वह ज्ञानस्वरूप अमर सर्व व्यापी और अनादि काल से ही रूप में रहा है।

इस आत्म संयम (समाधि साधन) में प्रत्येक मनुष्य का यहां तक कि प्रत्येक प्राणी का समान अधिकार है। इस समय हमारे साथ जो धर्म को नहीं भी मानता उसका कुछ विशेष परित्याग नहीं किया जा सकता है। क्योंकि हमें इस समय (साधारण अवस्था में) ईश्वर तत्व की कुछ भी अनुभूति प्राप्त करना है। इस समाधिअवस्था प्राप्त

करने के लिये प्रत्येक अङ्ग (अङ्ग स्पर्श में लिखी विधि) के नियम विशेष रूप से विचारे हुये नियमित श्रेणी बद्ध और वैज्ञानिक प्रणाली से सम्बन्ध किये गये हैं। यदि उन नियमों का ठीक २ नियम पूर्वक संयम किया जाय तो यह निश्चय ही हमें अपने प्राकृतिक लक्ष्य तक पहुंचा देगी। उस समय हम में से सब का सब दुःख चला जायगा। कर्मों के बीज दग्ध हो जायगें और हमारी आत्मा अनन्त काल के लिये मुक्त हो जायगी।

आत्मसंयम का फल

उस कठिनता दीख पड़ने वाले गूढ़ स्थान में अनुप्रविष्ट बुद्धि में छिपा, गहन स्थान में रहने वाले, पुरातन देव को अध्यात्म योग की प्राप्ति द्वारा जान कर धीरपुरुष हर्ष शोक को त्याग देता है। मनुष्य इस आत्मतत्त्व को जान कर और उसे भलीप्रकार जानकर देहादि संघात् से पृथक करके इस सूक्ष्म आत्मा को पाकर तथा इस मोदनीय को उपलब्ध कर अति आनन्दित हो जाता है। जो धर्म से पृथक, अधर्म से पृथक, तथा सारे वेद जिस एक पाद का वर्णन करते हैं समस्त तपों को जिसकी प्राप्ति का साधन बतलाते हैं और अब जिसकी साधना के लिये ब्रह्मचर्य पालन करना संयमी अपना धर्म समझते हैं, उसी पद में पहुंचे हुये साधक को बाह्य व अन्तर्जगत् में सर्वत्र ही 'ॐ' ऐसा भासता है यह अक्षर ही ब्रह्म है, यह अक्षर ही पर है, इस अक्षर को ही जानकर जो जिसकी इच्छा करता है, वही वह पाता है। यही श्रेष्ठ अवलम्बन है, इस अवलम्बन को जानकर पुरुष ब्रह्मलोक में महिमान्वित होता है।

जो अनित्य पदार्थों में नित्यस्वरूप तथा ब्रह्म आदि चेतनों में चेतन है और जो अकेला ही अनेकों की कामनायें पूर्ण करता है, अपनी बुद्धि में स्थित उस आत्मा को जो विवेक बुद्धि पुरुष देखते हैं, उन्हीं को नित्य शान्ति प्राप्त होती है औरों को नहीं। वहाँ, (उस आत्मलोक में) सूर्य प्रकाशित नहीं होता और चन्द्र तारे भी नहीं चमकते हैं और न विद्युत ही चमचमाती है, इस अग्नि की तो बात ही क्या है? जिसके प्रकाशमान होते ही सब प्रकाशित होते हैं, जिसे जानकर शांति मिलती है, उस अक्षरब्रह्म की प्राप्ति हमें हुई।

शान्ति

जिस मनुष्य में संध्या अनुष्ठान पाया जाता है, शान्त पवित्र और सत्यार्थ जीवन में, उतावली, आवेश नाम को भी नहीं पाई जाती है, आत्म विजय और प्रभु संयम से सदैव शांति मिलती है। शांति एक ऐसा पदार्थ है, कि जिसके द्वारा सन्ध्या साधक के गुण देदीप्यमान हो जाते हैं। महात्माओं के मस्तिष्क की प्रभा किरीट की भांति योग की शांति मनुष्य के गुण देदीप्यमान कर देती है। जिस मनुष्य में शांति नहीं, उसकी सबसे बढ़ी हुई शक्ति भी निर्बलता की सूचक है। जो मनुष्य जरा २ सी विघ्नबाधाओं के आने पर अपनी शक्ति खो देता है, वह कदापि सन्ध्या के रहस्य को नहीं समझ सकता है। जो पाप, लोभ और संकट के समय क्रोध में अन्धा हो जाता है, अपने आप को बिलकुल भूल जाता है उसके लिये यह संसार महान नरक है। तब ही तो वह संसार को असार कहता है।

सन्ध्या साधक मनुष्य अपने को वश में रखते हैं। इस प्रकार वह धीरे २ मन पर विजय प्राप्त करके शांति लाभ उठा सकते हैं। शांति लाभ करने से केवल प्रभाव और सुख को प्राप्त करते हुये सन्ध्या की शांति समझ सकते हैं। अध्यात्म के उपासक को ऐसा समय नहीं मिलता है कि उसे शोक और पश्चात्ताप करना पड़े।

प्राय: देखा गया है, कि सबही धर्मसम्प्रदाय शांति के लिये परमात्मा से प्रार्थना करते हैं, परन्तु उन्हें शांति छू नहीं जाती है। कारण स्पष्ट है कि वह नीच मनोविकारों और विपत्तियों में ऐसे फंसे रहते हैं, जिनमें क्षणिक सुख मिलता है और कभी २ वह दु:खों को भी सुख समझ कर प्रार्थना करते हैं, ऐसे मनुष्यों को सुख के अर्थ समझ में नहीं आते। यद्यपि शांति प्राप्त करना कठिन अवश्य है, किन्तु शांति के मार्ग भी इतने सरल हैं, कि एक बार शिवसंकल्प से आत्मसंयम से अपना लक्ष्य स्थिर कर लिया जाय तो निश्चय ही थोड़े समय में शांति प्राप्त कर सकते हैं। क्रमश: उन अभ्यासों को अपनाओ और इन आवेगों तथा मनोविकारों को त्याग दो, जो शांति के शत्रु हैं और अपने में उन सद्गुणों का समावेश होने दो, जो किसी बाह्यपरिस्थिति के बदले से अपना रूप नहीं बदल सकते। उसके लिये प्रथमकर्तव्य मनोनिग्रह से प्रभु संयम है।

जो मनुष्य अपने अन्दर सन्ध्या का प्रभाव प्रवेश कर सकता है, और दैनिक क्रियाओं में अनुभव लेता रहता है वह मन को शांत करने के लिये और उत्कृष्ट गम्भीरता

के लिये यत्नवान होकर उन त्रुटियों को लिखता रहता है, जो बाह्यपरिस्थिति के बदलने से नहीं बदलती हैं, वह अवश्यमेव शांति प्राप्त कर सकता है। मनुष्य जितना आत्म-संयमी होगा, उतना ही वह सुख का कारण अनुभव करेगा। आत्मसंयम निरन्तर अभ्यास से प्राप्त होता है, मनुष्य को अपनी निर्बलता दूर करने का अभ्यास डालना चाहिये। वह धीरे २ अपने सम्पूर्ण मनोविकारों पर अधिकार कर लेता है। अपनी इन्द्रियों का वश में करने से मन की गूढ़ और पेचीदा बातों का ज्ञान हो जाता है और यही आत्म-संयम शांति प्राप्त कराता है।

जिस मनुष्य ने सन्ध्या अनुष्ठान द्वारा अपने अन्तस्थ भावनाओं को शुद्ध कर लिया है, और जिसने स्वयं तथा अपने संसार को लाभ पहुंचाना है, और शान्ति जिसके जीवन का मुख्य उद्देश्य है, वही मनुष्य सन्ध्यायोग का अधिकारी है। इन निर्बल आत्माओं को शान्त मनुष्य से शान्त्वना मिलती है। कारण कि जो योगी आत्मविजय कर लेते हैं, वही दूसरों को सहारा देने वाले हो सकते हैं।

शांति का उपासक सुख और ज्ञान के स्रोत को अपने अन्तःकरण में देख लेता है, वह ऐसा स्रोत है, जो कभी नहीं सूखता है, उसकी सञ्चित शक्ति उसके वश की होती है। सन्ध्याशक्ति की कोई सीमा नहीं, वही बल और सौन्दर्य मौलिकता का परिचय देती है। वह संसार की शक्ति का ज्ञानवान अस्त्र बन जाता है जिसके द्वारा

संसार के कार्य चलते हैं इस प्रकार वह संसार के प्रलोभनों में नहीं पड़ता है। स्वार्थ को छोड़ देने से वह लोभ व लालच दुःख कष्ट और भय को भी छोड़ देता है। शान्त मनुष्य अपनी शक्ति बल से प्रत्येक घटना का भविष्य जान कर सामना कर सकता है और न हो उसे किसी बात की तैयारी करनी पड़ती है।

शान्ति से अभिप्राय मन के सम्पूर्ण विकारों को निकाल कर शुद्ध और पवित्र हो गये हों, सर्व प्रकार की मनोवृत्तियां जो पहले विपरीत दशा में बही चली जाती थी, अब एक-मुख हो कर, एक ही महान् उद्देश्य की पूर्ति में लग गई हों। जब तक पूर्णशान्त नहीं हो लेता है, तब तक पूर्ण विजयी भी नहीं हो सकता है। जहां प्रकृति पर विजयी हो पाता है, वहीं शांति आ विराजती है। जिसने सन्ध्या के बल से सैकड़ों मानसिक विकारों का नाश कर दिया है और गुप्त रूप से अपने इन्द्रियों पर काबू पा लिया है, वही शक्तिशाली शाश्वत साम्राज्य का उपभोग कर सकता है। तब ही सन्ध्या साधक की शांति कह उठती है—

ॐ द्यौ शान्तिरन्तरिक्ष ꣳ शान्ति पृथिवी शान्ति रापशान्तिरोषधय शान्तिः। वनस्पतय शान्तिः विश्वेदेवा शान्तिः ब्रह्म शान्तिः सर्व ꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि: य-अ-३६-मं-१७

शान्ति का उपासक कौन है? सुखवादी उत्तर देता है, कि—

'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्' में ही सब कुछ है। हितवादी कहता है तप और स्वाध्याय में, प्रकृति के प्रत्येक परमाणुओं में, प्रकाशमान ग्रहों में, अन्तरिक्ष (Space) में, पृथिवी के अणु २ में, जल में, औषधियों में, देव दर्शनों में शान्ति कूट २ कर भरी पड़ी है, क्योंकि हम साधना द्वारा यह प्रत्यक्ष कर रहे हैं, कि उस अनादित्व शक्ति ने अनन्तकालीय घटनाचक्रों से मानुषी जन्म को सुअवसर दिया है कि वह इस मनुष्य देह से भगवान् का विराट् दर्शन करे और शास्त्रशाश्वत् साम्राज्य का सुखभोग करे।

क्या इस शान्ति मन्त्र पाठ करने का अधिकार सबको है? योगी उत्तर देता है कि—जिसने साधना को पराकाष्ठा पहुँचाई हो, अर्थात् जो उपस्थान में निरन्तर रमण करता हुआ यह प्रत्यक्ष कर रहा हो कि—

उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्य्यम्।

यह सूर्य की उज्वल प्रभा, यह तारों की चमचमाती हुई अनन्त ब्रह्माण्ड व्यापिनी महाशक्ति। इस पृथिवीपर बड़ो २ पर्वत मालायें अथाह जलसमुद्र, शुष्क रेगिस्थान और हरेभरे महान् घनघोर अरण्य, बनस्पति और ओषधियों में ये चमत्कृत गुणों को सन्ध्यासाधक अपने योग कौशल से प्रत्येक पदार्थों के आन्तरिक अवयवों में प्रवेश कर साक्षात

कर रहा है कि यह तो उस अनन्त शक्ति, निर्विकार स्वरूप के सांकेतिक चिन्ह हैं, जिस को ये पदार्थ अव्यक्त रूप से प्रार्थना कर रहे हैं कि सृष्टि के प्रत्येक पदार्थों को परिवर्तन कर सकने वाली शक्ति में तथा सर्वत्र ही शान्ति स्तर स्तर में व्याप्त है। इस प्रकार सन्ध्या साधक कह उठता है कि 'द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष ॐ शान्ति': इति।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः



संक्षेप से सन्ध्या में करने योग्य क्रियायें।

पिछले सब प्रकरणों में वर्णन किये हुये सन्ध्या विधि में सफल होने पर, उनके अनुभव ने साधक के हृदय में एक प्रकार की प्रज्वलित सन्ध्या की अग्नि में मनुष्य के सब के सब वर्तमान और सञ्चित कर्म दग्ध हो जाते हैं, और उसको साक्षात् निर्वाणपद प्राप्त हो जाता है। सन्ध्या से ज्ञान प्राप्त होना अनिवार्य है और वह ज्ञान ही मनुष्य के लिये मार्ग प्रदर्शित करता है। जिस में ज्ञान और योग दोनों ही विराजमान हों, परमात्मा उसके लिये अति प्रसन्न हो जाते हैं। जो साधक निरन्तर सन्ध्यायोग का अभ्यास करते रहते हैं, उनको मनुष्य ही नहीं बल्के देवरूप समझना चाहिये।

यह सन्ध्यायोग दो भागों में विभक्त है जैसे 'लययोग' और 'ब्रह्मयोग'। जिसमें अपने का शून्यगुण विहीन चिन्तन किया जाता है, उसको 'लययोग' कहते हैं। जिस सन्ध्या में साधन द्वारा साधक आत्मा को आनन्द पूर्ण पवित्र व ब्रह्म के साथ योगरूप से विचार करता है, उसको 'ब्रह्मयोग' कहते हैं। हम जिन अन्यान्य योगों की बात शास्त्रों में पढ़ते हैं, या सुनते है, वे सब के सब इस ब्रह्मयोग, अर्थात् जिस ब्रह्मयोग में योगी अपने को और सारे जगत् को यथावत् अवलोकन करता है, यही सन्ध्या सर्व श्रेष्ठयोग कहलाता है।

सन्ध्या योग के भिन्न २ अङ्ग हैं। यथा॰ यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान, और समाधि, इसी को क्रमबद्ध साधना से अष्टाङ्गयोग की सिद्धि होती

है। जिस प्रकार रसायन शाला में रसायनवेत्ता अनेक रसों का मिश्रण करके किसी एक पदार्थ को निर्माण करता है, उसी तरह ब्रह्म को साक्षात् करने के लिये इन अष्टाङ्ग-योगों को सिद्ध करना होगा। इन में अहिन्सा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को यम कहते हैं। यम की साधना से चित्त निर्मल और शुद्ध रहता है, जिसको सविस्तार पिछले प्रकरणों (चरित्रगठनाध्याय) में लिख आये हैं। शरीर व मन वाणी से निरन्तर सब प्राणियों में से किसी की भी हिन्सा न करना, अथवा किसी को भी कष्ट न देना, अहिन्सा कहलाती है। सत्य के द्वारा यथार्थ में कार्य करने की शक्ति प्राप्त कर सकते हैं, सत्य से ही सम्पूर्ण लाभ होता है. सत्य में ही सब स्थित है, जिसको जैसा देखा हो, या सुना हो उसको वैसा ही वर्णन करने का नाम 'सत्य' है। चोरी या बलपूर्वक किसी दूसरे को वस्तु न लेने का नाम 'अस्तेय' है। सब अवस्थाओं में किसी प्रकार भी मानसिक भावना से भी परस्त्री को कुदृष्टि से न देखने का नाम 'ब्रह्मचर्य' है। अधिक कष्ट के समय किसी के पास से कुछ उपहार या सहायता न लेने का नाम 'अपरिग्रह' कहते हैं। क्योंकि जब कोई व्यक्ति किसी दूसरे के पास से कुछ उपहार ग्रहण करता है, शास्त्रों में कहा है कि उस समय उसका हृदय अपवित्र हो जाता है, वह अपनी स्वाधीनता भूल जाता है और उस में वह बद्ध व आसक्त हो जाता है।

सन्ध्यासाधक को यह 'नियम' भी अनिवार्य पालन करने पड़ते हैं। यथा—नियमपूर्वक अभ्यास और कार्य में तत्पर रहने को 'नियम' कहते हैं। 'तप' कठिन व्रत का नाम तपस्या है। 'स्वाध्याय' अध्यात्म शास्त्रों का पढ़ना। 'सन्तोष' सब अवस्थाओं में सन्तुष्ट रहना। 'शौच' आन्तरिक तथा बाह्यक शुद्धता। 'ईश्वर प्रणिधान' उपासना अर्थात् ईश्वर के निकट बैठना। इसके अतिरिक्त उपवास आदि अन्यान्य उपायों से शरीर के संयम करने को शारीरिक तपस्या कहते हैं।

वेद का पाठ करना या गायत्री को अर्थ सहित विचार पूर्वक जपना, मनन करना, जिससे सत्वबुद्धि हो, उसको ही 'स्वाध्याय' कहते हैं। जप करने के तीन भेद हैं, यथा-वाचिक, उपांशु, और मानसिक। वाचिक सबकी अपेक्षा निम्नश्रेणी का होता है। जो जप ऊँचे स्वर से किया जाय, जिसको सब सुन सकें, उसको 'वाचिकजप' कहते हैं। जिस जप में थोड़ा २ मुंह खुले, परन्तु पास बैठे हुये मनुष्य न सुन सकें, उसको 'उपांशु' जप कहते हैं। जिस में किसी प्रकार का शब्दोच्चारण न हो, केवल मन ही मन, अर्थात् मानसिक भावना से जप किया जाय, उसको 'मानसिक जप' कहते हैं। यह मानसिकजप ही सब की अपेक्षा उच्चतम है। सन्ध्याविज्ञान में शौच दो प्रकार का कहा है, यथा बाहरी और आन्तरिक। मिट्टी या जल अथवा अन्यान्य उपायों से जो शरीर को शुद्ध किया जाय, उसको बाहरी पवित्रता कहते हैं; और आन्तरिकपवित्रता प्राणायामादि क्रिया और सत्यव्यवहार से किया जाता है। सन्ध्या में इन दोनों

प्रकार की शुद्धता की नितान्त आवश्यकता है। जब दोनों प्रकार के शौचाचारों का पालन न किया जा सके, समाधि अवस्था में उस समय केवल आभ्यन्तर शौच ही अवलम्बन करना चाहिये। साधारणतया दोनों प्रकार के शौचाचारों के बिना सन्ध्या सध नहीं सकती।

ईश्वरप्रणिधान का अर्थ भगवान् की स्तुति करना, स्मरण करना, भक्ति करना आदि २ है। प्राण का अर्थ अपने शरीर के भीतर वर्तमान् जीवनशक्ति; और आयाम का अर्थ उसका साधन करना है। यह प्राणायाम तीन प्रकार का होता है। यथा-अधम, मध्यम और उत्तम। यह भी दो श्रेणियों में विभक्त होता है। पूरक और रेचक। जिस प्राणायाम में १२ सेकण्ड तक वायु पूर्ण किया जाय, उसको अधम कहते हैं, जिसमें २४ सेकण्ड तक पूर्ण किया जाय, उसको मध्यमप्राणायाम कहते हैं; और जिसमें ६६ सेकण्ड तक पूर्ण किया जा सके उसको उत्तम कहते हैं। जिस प्राणायाम के करने में पहले पसीना, फिर कम्पन, उसके बाद आसन से ऊपर निराधार (वायु) में उठा जाय और आत्मा परमानन्दमय परमात्मा के साथ संयुक्त हुआ जाय, वही सब से उच्च प्राणायाम कहलाता है।

'गायत्री' वेद का सर्वश्रेष्ठ पवित्र मन्त्र है, उसका आशय यमनियमादि से लेकर और समाधिसाधन तक का सार संग्रहीत है। जिसको हम सविस्तार ग्रन्थ बढ़ जाने के भय से नहीं लिख सके हैं, तथापि जैसा भाव मन्त्र में प्रदर्शित किया गया है, उसका सारान्शभाव यह है कि

"हम इस ब्रह्माण्ड के सविता नाम देवता के वरणीय तेज का ध्यान करते हैं, जो हमारी बुद्धि में ज्ञान का विकास करदे"। इस मन्त्र के आदि और अन्त में प्रणव (ॐ) संयुक्त रहता है। एक बार प्राणायाम में कम से कम तीन बार गायत्रीमन्त्र का मानसिक जाप करना चाहिये।

प्रत्येक शास्त्र में प्राणायाम तीन भागों में विभक्त है। यथा—रेचक—श्वास बाहर छोड़ना, पूरक-श्वास भीतर खींचना, कुम्भक-श्वास को भीतर ही धारण करना। अनुभव सम्पन्न इन्द्रियां क्रमशः बहिर्मुख होकर काम करती हैं, इस लिये इन इन्द्रियों को आधीन करने को (इन्द्रियस्पर्श लिखीविधि) प्रत्याहार कहते हैं। अपनी तरफ शुद्धवृत्ति का संग्रह ही प्रत्याहार शब्द का अर्थ है।

हृदयपद्म में अथवा भृकुटी के मध्यभाग में मन को स्थिर करने का धारणा कहते हैं। जब मन एक तरफ संलग्न रहता है, उस एक मात्र स्थान को अवलम्बन करके जब वृत्तिप्रवाहों का समूह अन्य वृत्तिप्रवाहों को स्पर्श न करके केवल एक ओर प्रवाहित होता है और सब वृत्तियां अवरुद्ध हो जाती हैं, तब उसी को 'ध्यान' कहते हैं जब इस ध्यान का भी कुछ प्रयोजन नहीं रहता है, केवल एक वृत्तिमात्र ही प्रवाहित होती रहती है, तब इस एक साक्षीरूप प्रवाह का नाम समाधि" है। इस अवस्था में किसी एक विशेष प्रदेश अथवा शरीर मध्यवर्ती विशेषशक्ति केन्द्रों का आश्रय करके ध्यान प्रवाह नहीं उठता। उस समय केवल हेयवस्तु की भावनाय

साधक में अवशिष्ट रहती हैं। यदि मन को किसी एक स्थान पर १२ सेकण्ड तक धारण किया जाय, तो इससे एक धारणा पूर्ण होगी। इस एक धारणा को बारह से गुनने पर जो समय निकले, उतने समय तक मन को एक वस्तु में स्थिर रखने को एक 'ध्यान' कहते हैं, और इस ध्यान को बारह से गुनने पर जितना समय निकले, उतने समय तक स्थिर रहने से एक 'समाधि' होती है।

अब इसके पश्चात् आसन की बात आती है। आसनों के सम्बन्ध में केवल इतनी बात समझना पर्याप्त होगा कि साधना में इस प्रकार बैठा जाय जिससे शरीर बिलकुल सुख पूर्वक रह सके। छाती, गर्दन, कन्धे और मस्तिष्क बिलकुल सुखपूर्वक टिक सकें। जहां पर अग्नि, जल का भय हो, चौराहे पर, अधिक कोलाहल के स्थान में, जहां पापाचारियों का अड्डा हो, ऐसे स्थान पर सन्ध्या करना उचित नहीं।

जब शरीर में अधिक आलस्य हो, जिस समय मन अधिक दुःखपूर्ण हो अथवा अस्वस्थता हो, उस समय साधन न किया जाय। एक मात्र गुप्त निर्जन स्थान में, या अपने ही घर में जहां एकान्त कमरा हो, जहाँ शुद्ध वायु प्रवाहित हो, सन्ध्या करनी चाहिये। आसन में बैठते ही सर्व प्रथम प्राचीन योगी गणों को नमस्कार कर साधना आरम्भ करनी चाहिये।

ध्यान की पहली विधि।

ठीक एक सीध में बैठ कर अपनी नासिका के अग्र-भाग में अपनी दृष्टि जमाओ, कुछ दिन ऐसा निरन्तर करने

के पश्चात् जब दृष्टि स्थिर हो जावे तब मस्तिष्क के ऊपरले 'सहस्रदलपद्म' भाग में यह विचार करो कि धर्म उसके मध्य भाग में है, ज्ञान उसकी डंडी समान है, योगी का प्राप्त होने वाली अष्टसिद्धियां इस पद्म की पंखड़ियां हैं, वैराग्य इस के मध्य बीजकोषकेसर चिन्तन करो। इस प्रकार साधन करते रहने से अणिमादि आठ अलौकिक सिद्धियां उपस्थित होती हैं, जो योगी इन समस्त सिद्धियों के प्राप्त होने पर भी उनका इच्छा रहित परित्याग कर देता है, वह मुक्ति को प्राप्त होता है। इस लिये इन सिद्धियों को पत्ररूप वर्णन किया गया है। इस पद्म को स्वर्णवर्ण सर्वशक्तिमान जिसका नाम 'ॐ' है, और उस परमज्योति से परिवेष्टित है, उसी का ध्यान करो।

ध्यान की दूसरी विधि।

अब एक और ध्यान की विधि लिखते हैं। विचार करो कि हृदय के भीतर एक आकाश विद्यमान् है और इस आकाश में एक अपनी शिखा के समान परमज्योति प्रज्वलित हो रही है, इस ज्योतिशिखा को अपने आत्मा के रूप में ध्यान करो, फिर इस ज्योति के भीतर एक और ज्योतिर्मय आकाश का चिन्तन करो, यही तुम्हारी आत्मा का आत्मा परमात्मारूप ईश्वर है। हृदय में यही परमात्मदेव का ध्यान करो। सत्य व ईश्वर में विश्वास से ये सब भिन्न २ वृत्तिस्वरूप हैं। इनमें यदि सिद्धि प्राप्त न कर सको तो भी भयभीत होने का कोई कारण नहीं। इसमें जितना तुम्हारे पास है, उसी को लेकर कार्यारंभ कर दो

इस प्रकार सब वृत्तियां क्रमशः साधना में अग्रसर होने पर स्वयं आगे आजायेंगी।

जो किसी के प्रति द्वेषभाव नहीं करता, जो सब का मित्र है, जो सब के प्रति करुणाभाव रखता है, जिस का अपने कहने मात्र का कुछ नहीं, जिसका अहंकार दूर हो गया है, जो सदा ही संतुष्ट रहता है, जो हमेशा योगयुक्त रहता है, जिसका मन स्थिर हो गया है, जो दृढ़ विश्वाससम्पन्न हो, जिसकी बुद्धि और मन ईश्वरार्पण हो गई हो, वही भगवान् का प्रियभक्त हो सकता है।

जो किसी चीज की भी अपेक्षा नहीं रखता, जो शुद्ध दक्ष सब विषयों का परित्याग कर अत्यन्त दुःख में भी उदासीन भाव से रहता है, जिसका दुःख दूर हो गया है, जो निन्दास्तुति में समभाव से वर्तता है, जो साधन में तत्पर रहता है, जो अपने ही घर में न फंस कर सारे संसार को अपना घर समझे, जिसकी बुद्धि स्थिर हो गई हो, वही सन्ध्या का अधिकारी हो सकता है।

सन्ध्या विज्ञान की मानसिक शक्ति

सन्ध्याविज्ञान सिद्ध कर लेने के अनन्तर मानसिक शक्ति, जिसे प्रत्याहार की शक्ति भी कहते हैं; किस प्रकार कार्य में परिणित की जा सकती है ? साधन करना होगा। तो अब यहां प्रश्न उठता है कि यह मानसिक शक्ति क्या है ? उत्तर में कहना पड़ता है कि इस के पूर्वप्रसंगों से आप यह बात अच्छी तरह से जान चुके हैं, कि किस तरह से विषयानुभूति होती है, इस को स्पष्ट करने के लिये सब से पहले इस ओर देखो कि हमारे शरीर में इन्द्रिय द्वारस्वरूप बाहर के शारीरिकयन्त्र (इन्द्रियां) रहते हैं, ये इन्द्रियां मस्तिष्क में स्थित स्नायुकेन्द्रों की सहायता से शरीर के ऊपर अपना २ कार्य करती रहती हैं, फिर इसके बाद 'मन' रहता है। जब ये सब एकत्रित हो कर किसी बाहरीवस्तु के साथ संलग्न रहती हैं, तो बस, तब ही हम उस वस्तु का अनुभव कर सकते हैं। परन्तु केवल मन को एकाग्र करके किसी इन्द्रिय में संयुक्त करके रखना बहुत मुशकिल काम है क्योंकि मन विषयों का दास बना हुआ है।

अब प्रश्न उठता है कि मनसंयम करने का फल क्या है ? इसका फल यह है कि वह 'मन' इन्द्रियरूप विषयानुभूति केन्द्रों में संलग्न न कर पावेगा। इस से सर्व प्रकार के भाव व इच्छायें बस में हो जायेंगी। अब आप यह बात अच्छी तरह से समझ गये होंगे। अब समझने की वह बात यह है कि इसको कार्य में परिणित करना क्या सम्भव है ? उत्तर में कहा जा सकता है कि बिलकुल

सम्भव है। पहले आप ने धारणादशा में भी देख पाया होगा कि किस प्रकार से मन एक ही स्थान पर बलपूर्वक स्थिर किया जाता है। और उन सम्प्रदायों को देख लीजिये कि जो विश्वास बल से आरोग्यकारी सम्प्रदाय दुःख व कष्ट अशुभ आदि का अस्तित्व बिलकुल ही अस्वीकार करने की शिक्षा देते हैं * अर्थात् यह भावना स्थिर कर लेते हैं, कि हमें दुःख व कष्ट कतई नहीं है। इस में यह बात अवश्य है कि इन के मत की बात दाहिने हाथ को बायें तरफ घुमा कर नाक पकड़ने के बराबर है। परन्तु यह भी एक योग की प्रक्रिया है, किसी तरह से उन्होंने इस को प्राप्त कर लिया है। जहां पर वे दुःख व कष्ट का अस्तित्व अस्वीकार करने की शिक्षा देकर लोगों का कष्ट दूर करने में सफल होते हैं, जानना चाहिये कि उन सब स्थानों में वे यथार्थ में प्रत्याहार की एक अङ्ग की शिक्षा देते हैं, क्योंकि वे अपने चिकित्साधीन व्यक्तियों के मन को इतना बलवान बना देते हैं, कि वह इन्द्रियों की बात प्रामाणिक नहीं मानते। वशीकरण (Hipnatism) विद्या के आचार्य भी ऊपर बताये हुये उपाय को अवलम्बन कर इङ्गित बल Suggestion कर कुछ क्षण के लिये अपने वशवर्त्ति व्यक्तियों के भीतर एक तरह का अस्वाभाविक

* योरप आदि देशों में एक सम्प्रदाय ऐसा चलपड़ा है कि जो अपने रोगग्रस्तों को यह शिक्षा देते हैं, कि तुम ऐसी भावना मन में स्थिर करलो कि हमें कोई रोग है ही नहीं। लेखक ने भी अनुभव करना चाहा, लेकिन कृतकार्य न हो सका।

प्रत्याहार उपस्थित कर देते हैं। जिस को साधारण वशीकरण इङ्गित कहते हैं, जिस से वह केवल रोगग्रस्त या मोहग्रस्त व्यक्तियों के इस प्रभाव को पहुंचा सकता है। वशीकरण-कारी जब तक स्थिर दृष्टि या किसी और उपाय से अपने वशवर्त्ती व्यक्ति के मन को जड़वत् निष्क्रिय अस्वाभाविक अवस्था में नहीं ले जा सकते हैं, तब तक वह कुछ भी सोचने, विचारने, सुनने, देखने की आशा क्यों न करे, उसका कुछ भी फल न होगा।

इस प्रकार दूसरे की इच्छाशक्ति के आधीन संयम-साधन से अपकार ही होता है, यही बात नहीं, अपितु जिस उद्देश्य से किया जाता है, वह बहुत करके सिद्ध भी नहीं होते देखा गया है। प्रत्येक जीवात्मा का लक्ष्य है कि सुख प्राप्त हो, स्वाधीनता प्राप्त करे। परन्तु यह स्वाधीनता प्राप्त होती है, मन के ऊपर प्रभुत्व जमाने से, या पंचमहाभूत की दासता से मुक्त होना और बाह्य व अन्तस्थ प्रकृति के ऊपर प्रभुत्व व क्षमता का विस्तार करना यह ऊपर बताये हुये प्रक्रिया से प्राप्त नहीं होता है। इससे चाहे हमारी इन्द्रियां वशीभूत हो जावें, अथवा विकृत अवस्था में इन्द्रियां को वश में करने को हमें बाध्य करें परन्तु इस प्रकार जबरन करने से वह हमें मुक्तिपथ में न ले जाकर और ही कुछ बन्धनों में डाल देता है। इस लिये सावधान हो जाना चाहिये कि किसी दूसरे को अपने ऊपर यथेच्छा शक्ति संचालन न कर देना चाहिये। क्योंकि इस प्रकार का प्रयोग करना उसका सर्वस्वनाश करना है। इसलिये जो कोई तुम्हें अन्धविश्वास करने

को कहे, या अपनी इच्छा के बल से संसार में लोगों को परिचालित करें और अपने वश में करें, उन लोगों को मनुष्यजाति का घोरशत्रु समझना चाहिये।

भारतीय संस्कृति स्वाभाविक ही अध्यात्मवादी है, इसका विज्ञान कोष अपार है, यहां के विज्ञानवेत्ता इतने उच्च शिखर तक चढ़ गये थे कि सोलहकलानिधान पूरण ब्रह्म तक कहलाने लगे। हमतो उन्हीं को विज्ञान तत्व वेत्ता समझते हैं, जो सूक्ष्मतत्व का अनुसन्धान कर प्रत्यक्ष कर सकते हैं और संसार भर को आस्तिक बना सके हैं। भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र अर्जुन को दिव्यदृष्टि देकर महाभारत के युद्ध में लड़ने वाले योधाओं को, तथा अखिल ब्रह्माण्ड में जो जैसा था, दिखला दिया और अर्जुन को आश्चर्य में डाल दिया। महायोगेश्वर शंकर विवाहित होते हुये भी कामदेव को भस्म करने में समर्थ हुये। अगर भगवान शंकर कामदेव को भस्म करने में समर्थ होते हैं, तो श्रीकृष्णचन्द्र सौभाग्यसमृद्धि होते हुये भी पूर्ण योगेश्वर हैं। इस प्रकार के दृष्टान्त भारतीय इतिहासग्रन्थों में अनेक प्रकार के मिलते हैं कि किस प्रकार मन के संयम द्वारा दूसरों को प्राण प्रदान कर सकते थे, लेकिन वर्तमान समय में पश्चिमीय प्रत्याहार का यद्किंचित् सिद्धि प्राप्त Haypnatism विद्या द्वारा भारत में भी अधिकाधिक प्रचार हो आया है और योग की अन्त्येष्टि कर डाली है। पश्चिमीय शब्दों को बदल कर भारतीय नामकरण कर भोली भाली जनता को अन्धकार के गढ़े में फेंक रहे हैं। सन्ध्या विज्ञान विशारद (ब्राह्मण) प्रचीन काल से ही

आशीर्वाद आदि मंगलसूचक शब्दों का प्रयोग करते आये हैं, जो दुःखित व रोगी मनुष्यों के लिये अचूक औषधि समझी जाती हैं, भारतीय ऋषिशैली प्रत्याहार की सर्वाङ्ग शैली समझनी चाहिये।

पिछले पाठों से यह स्पष्ट हो चुका है कि सन्ध्याविज्ञान साधन द्वारा शक्ति सन्तुलन करके मनुष्य प्रकृतिविज्ञान में अगाधशक्ति का विकास कर सकता है। विकसित शक्ति सब कुछ कर सकती है। शक्ति का यन्त्र मैं हूं, बस यही अनुभवानुभूति सन्ध्याविज्ञान की सब कुछ नहीं है। साधक को यह भी ज्ञात कर लेना चाहिये कि शक्ति साधक ही है। पुरुष की इच्छायें शक्ति के साथ साधक कार्य करता आ रहा है। शक्ति के साथ साधक का अङ्गांगी परिचय हो जाने पर ही ज्ञान का विकास होता है। साधक शक्ति की लीला देखता है और जगत में शक्ति की लीला का ही अनुभव लेता रहता है। शक्ति के साथ अपने को मिला देने पर ही साधक यह देख पाता है कि अनन्त विराटशक्ति के आगे पुरुष विद्यमान है। पुरुष का दर्शन हुये बिना शक्ति विकास होना कदापि सम्भव नहीं। पुरुप के प्रत्यक्ष हो जाने पर ही इस बात का अनुभव हो जाता है कि पुरुष की साक्षात् रूप से ही शक्ति हम से कार्य करा रही है। उस समय साधक अपने को शक्ति के रूप में पाता है।

उस पुरुष को जाने बिना या बिना प्राप्त किये यन्त्र बोध की साधना अपूर्ण रहती है। यह केवल भाव की

लीला है। शक्ति सब कुछ कार्य करा रही है और शक्ति ही अनुभव करा रही है। शक्ति का सम्पर्श यन्त्र का सर्वस्व है। इस प्रकार के भाव ही भावनावस्था बहुत अच्छी हो जाने पर ही सन्ध्या विज्ञान साधने की ओर आकर्षित होता है। तथा उससे आगे जान पड़ने की शक्ति आ विराजती है।

भाव शक्ति का द्योतक है, शक्ति रहने से भगवान का कार्य करने की शक्ति का अभाव नहीं रहता है। ज्ञान का आगमन हुये बिना बृद्धसृष्टि का होना अनिवार्य हो जाता है। इस लिये लोगों को बृद्ध होने तक ज्ञान को पूर्ण रीति से धारण करना चाहिये। ज्ञान की सहचरी समता है; और समता ही बृद्धसृष्टि की खास जड़ है। किसी प्रकार भी अहंकार को स्थान न देना चाहिये. अगर ऐसा ज्ञान तुम्हारे अनुभव में आता है, तो समझो कि हमें नित्य 'अघमर्षण मन्त्र' के मनन के अनुभव का प्रादुर्भाव हुआ है। बहुतों में स्वाभाविक गर्व रहता है. बाहर से सात्विक अहंकार राजसिक तामसिक की अपेक्षा अच्छा दिखाई पड़ता है. किन्तु वास्तव में है वह अहंकार ही। उसी के सहारे राजसी और तामसी छिपे रहते हैं। कुशलता इसी में है कि अहंकार सर्वथा त्याग दिया जाय। यह केवल दीर्घवैराग्य साध्य है।

यह विकसित संचित शक्ति किस प्रकार परोपकार में आ सकती है, वह अगले अध्याय में देखिये।

o --

शक्ति विकास और उसका आकर्षण ।

ऊपर लिखे पाठों से स्पष्ट हो गया है, कि मनुष्य शक्ति का अनन्त भंडार है और यह शक्ति प्रत्येक मनुष्य मे न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान है। सन्ध्या साधना से वह शक्ति विशेष विकसित हो जाती है, इस लिये ये साधना अनिवार्य हो जाती है, कि प्रत्येक मनुष्य आत्मानुभव लेता हुआ प्रकृति पर विजय प्राप्त करे। बाह्य तथा अन्तस्थ अवयवों को अपनी इच्छानुसार चलाना, और नेत्र श्रोत्र आदि बाह्य इन्द्रियों से आकाशीय तत्व का अभ्यास द्वारा आकर्शित करना ही सन्ध्याविज्ञान का जानना होता है। जब शक्ति आकर्षण करने की समता प्राप्त हो जाती है, तो विश्व का अनन्त कोष साधक के लिये खुल जाता है। अब साधक इन शक्तियों की रक्षा करता हुआ प्राणि-मात्र को सहारा देने वाली यष्टिका बन सकता है।

संसार में जितने भी महापुरुष हुये हैं, वह सबके सब विकसित शक्ति सम्पन्न थे। वह इस आकाशीय तत्त्व-संयम द्वारा महान् बलशाली हुये हैं। वे अपने अन्तस्थ अवयवों में कम्पन उत्पन्न करके समस्त संसार में अपना प्रभाव विस्तार करने की समता रख सके हैं।

विश्व में जितने प्रकार के तेज व शक्ति दिखाई पड़ती हैं, वह सब के सब अनन्त आकाशीय प्राणमय कोष में विद्यमान हैं। इसलिये भारत की प्राचीन परिपाटी आठवर्ष के बालक को "उपनयन" करा कर प्राणसंयम का पाठ

पढ़ाते थे। बिना संस्कृत हुये मनुष्य यथार्थ में इस गहन-सत्य को उपलब्ध नहीं कर सकते। इससे अधिक इसकी व्याख्या भी तो नहीं हो सकती है।

आप अपने शरीर में अनुभव करते होंगे कि यह प्राण कभी एक तरफ अधिक और दूसरी तरफ कमी पर आ जाया करता है। इस प्रकार के असमंजस को रोग कहते हैं और यही न्यूनाधिक मात्राशक्ति असमंजस रोग निवारण का अन्तिम अध्याय है।

सबलस्थान से प्राण को हटा कर निर्बल स्थान को प्राणप्रेषित करना ही प्राचीन गुरुओं की परिपाटी है। किस तरफ अधिक और किस तरफ प्राण शक्ति कम है, इसी कमी बेशी को समानता पर लाना यह प्राणायाम की विशेष क्रिया है। अनुभव शक्ति जितनी तीव्र होगी, बुद्धि उतनी ही समझने में समर्थ होगी। पैर के अंगूठे में या हाथ की उङ्गलियों में जितना प्राण आवश्यक है, वह उतना ही प्राणसंयम द्वारा पहुंचाया जा सकता है।

जब साधक रोगी को आराम करने की चेष्टा करना चाहता है, उस समय सबसे पहली इच्छा उसकी यह होती है, कि वह अपने स्वास्थ्य को दूसरे में प्रवेश करदे, यहप्राचीन समय की चिकित्सा प्रणाली है, और यही सन्ध्या कर्मकाण्डियों की आशीर्वाद है। जानबूझकर या अनजान में एक व्यक्ति अपने स्वास्थ्य को दूसरे में प्रवेश कर सकता है। बलवान व्यक्ति यदि निर्बल मनुष्य के पास हमेशा रहता है, तो निर्बल मनुष्य अवश्य सबल हो जायगा। यह बल प्रदान

करने का तरीका जानबूझकर भी हो सकता है और अनजान में भी। उस समय उसका काम अपेक्षा से अधिक शीघ्र व उत्तम प्रकार से होता है और यह एक प्रकार की आरोग्य करने की प्रणाली है। इस में आरोग्य करने वाले को स्वयं बलवान न होने पर भी दूसरे के शरीर में स्वास्थ्य संचार कर सकता है। इन सब क्रियाओं में इस आरोग्यकारी व्यक्ति को प्राणजयी होना आवश्यक है। क्योंकि वह कुछ क्षण के लिये अपनी प्राणशक्ति में एक प्रकार की विशेष गति उत्पन्न करके दूसरे के शरीर में प्राण को पहुंचा सकता है। समय पड़ने पर यह कार्य बहुत दूर भी किया जा सकता है। वास्तव में दूरत्व का अर्थ यदि क्रमविच्छेद भी हो, तो दूरत्व कहां है? जहां परस्पर एक दूसरे का कुछ सम्बन्ध या कुछ भी मिलन न हो सके। बस, केवल एक वही अविच्छिन्न वस्तु दोनों में एक समान अन्तर रहित विराजमान् हो रही है। आप उसके एक अंश हो, और सूर्य्य उसका एक भाग है। दूरत्व का कोई अर्थ ही नहीं है। वह शक्ति स्तर २ में व्याप्त है। नदी के एक किनारे व दूसरे किनारे में क्या कोई क्रमविच्छेद है? जब नहीं है तो तब यह प्राण-शक्ति एक ओर से दूसरी ओर कैसे नहीं फिर सकती है? यदि फिर सकती है, तो तब इसके विरुद्ध कोई युक्ति या दलील भी नहीं ठहर सकती है। यह बिलकुल सत्य है कि यह प्राणशक्ति अधिक से अधिक दूर भी पहुंचाई जा सकती है।

यह पहले लिखा जा चुका है कि धारणाशक्ति का जितना अच्छा संयम किया होगा, उतना ही अधिक तुम इस में कृतकार्य हो सकोगे। मानलीजिये कोई व्यक्ति घर से रुष्ट हो कर परदेश चला गया है, अब उसका पता तक नहीं मिलता है, अथवा प्रदेश में कोई व्यक्ति बीमार है। ऐसी दशा में मानसिक प्रयोग से ही उस व्यक्ति के ऊपर प्रभाव डालकर आप अपना मनोर्थ पूर्ण कर सकते हैं। लेकिन यह एक दिन में होने वाला कार्य नहीं है, जो आप इस में असमर्थता प्रगट कर सको, यह तो कई दिन में होने वाला कार्य है।

परन्तु विश्वासबल से आरोग्य करने वालों को एक भ्रम हर समय होजाया करता है, वह यह कि उनका विश्वास रहता है, कि हर समय रोगी को विश्वास ही आराम कर सकता है। वास्तव में यह दृढतापूर्वक नहीं कहा जा सकता है कि विश्वास ही रोगी का रोग मुक्त कर सकेगा।

बहुत से एसे रोग हैं, जिन में रोगी यह नहीं समझ सकता है कि मुझ में यह रोग है, लेकिन विश्वास प्रेपक समझ सका है। यदि रोगी अपनी आरोग्यता के विषय में अपना विश्वास ही अपना प्रधानलक्षण मानता है, और इसी से उसको आराम या मृत्यु होने की सूचना मिलती है, तो इन स्थानों पर केवल विश्वास से ही रोगमुक्त नहीं होते देखा गया है। यदि विश्वास से ही आराम होता, तो ये सब रोगी मौत के मुंह में न जाते.

क्योंकि कोई यह नहीं चाहता है कि मैं मरूं! बात यथार्थ में यह है कि प्राणशक्ति से ही रोगमुक्त होता है कोई प्राणजित पवित्रात्मा पुरुष अपनी प्राणशक्ति को एक निर्दिष्ट कम्पन द्वारा दूसरे व्यक्ति में पहुंचाकर उसके शरीर को उसी प्रकार कम्पन करा सकता है। हमारी प्रतिदिन की घटना में ही इस बात का प्रमाण पा सकते हैं। मैं वक्तृता देता हूं, उस समय मैं क्या करता हूं? मैं अपने शरीर व मन में एक तरह का कम्पन उत्पन्न करता हूं, अब मैं जितना ही इस में सफल होता हूं, उतना ही श्रोतागण मेरे वाक्यों से मुग्ध हो जाते हैं। आप यह अच्छी तरह जानते हैं कि वक्तृत्वशक्ति जितनी अच्छी होगी, श्रोतागण उतने ही मेरे वाक्यों से मुग्ध हो जाते हैं। इस प्रकार उत्तेजना कम होने पर आपको मेरी वक्तृता सुनने में अच्छी न लगेगी। जो महान् आत्मायें अपनी इस महान शक्ति को संचार करके इस जगत् को बहुत ऊंचा उठा गये हैं, उन में जिन महात्माओं ने अपने प्राण में उच्च कम्पन करके इस प्राणशक्ति के वेग को उतना ही अधिक दूसरे पर क्षण भर में अपना प्रभाव कर सके हैं। जिस से लाखों करोड़ों लोग उन की ओर आकृष्ट हुये हैं और संसार भर के लोग उनके भाव के अनुसार वर्तने लगे हैं।

इसलिये दूसरे की शक्ति पर निर्भर न रह कर हमेशा अपने मन का व्यवहार करना चाहिये। और एक बात स्मरण रखनी चाहिये, यदि तुम किसी रोग से ग्रस्त हो तो दूसरे व्यक्ति की शक्ति तुम्हारे ऊपर कुछ प्रभाव न डाल सकेगा, चाहे वह कितना ही साधु क्यों न हो। वह यदि

तुम्हें विश्वास करने को कहे तो जहां तक हो सके उस की बात पर विश्वास करना तो दूर रहा, उसकी संगति तक छोड़ देनी चाहिये। आश्चर्य है कि इस तरह से भेड़ बकरी के समान इन प्रवाहितकारी व्यक्तियों को अपने इशारे पर चला कर, परिणाम में सम्पूर्ण जाति को एक दम अंधतम के गढे में ढकेल देता है। बाहर से किसी दूसरे के सहारे से शक्ति का इशारा पाकर किसी व्यक्ति वा जाति का इस प्रकार अप्राकृतिक उपाय से उन्नत होने की अपेक्षा अवनत रहना ही सब से अच्छा है। इनको अपना उत्तरदायित्व का पता नहीं है। ये मनुष्य का जितना उपकार करते हैं, विचार होने पर निराशा का शोक छा जाता है। इसलिये जिसमें तुम्हारी स्वाधीनता नष्ट न हो, ऐसे सब तरह के प्रभावों से अपने को सावधान रखना आवश्यक है। जिन प्रभावकारी मतों की समालोचना की गई है, यद्यपि वह हमारे सन्ध्याविज्ञान का विषय नहीं था, किन्तु प्रत्याहार का एक नियत अंश होने से तथा जनता का अरिष्ट समझ कर यह आलोचना की गई है।

अन्तिम दो शब्द।

आधुनिक समय का सबसे बड़ा काम यही होगा कि कुछ अध्यात्मवैज्ञानिकों को पैदा करे। इस समय संसार का भविष्य भारत के वैज्ञानिकों पर निर्भर है। यद्यपि इस समय यहां कार्य करने वाले कुछ धुरन्धर व्यक्ति हैं, किन्तु भावी भारत के भविष्य के लिये पूर्ण योगी पुरुषों की आवश्यकता है, जिस प्रकार महापुरुष दयानन्द अपने अल्प समय में ही एक भारी क्रान्ति मचा गये हैं, ठीक उसी तरह जो विराट् कार्य भार भारत पर पड़ने वाला है, उस भार को पूर्ण अध्यात्म वैज्ञानिकों के बिना साधारण बुद्धि वाला जीव चाहे वह कितना ही बड़ा अथवा कार्यकर्ता क्यों न हो, नहीं सम्भाल सकेगा और न उसका सम्भालना किसी प्रकार सम्भव है। क्योंकि इतिहास इस बात की साक्षी देता है कि खड्ग के बल से समत्व चाहने वाले अपना ही नहीं, किन्तु संसार का भी सत्यानाश कर गये हैं। भविष्य में भारत को जिस विपुल विराटकार्य का भार अपने ऊपर लेकर खड़ा होना पड़ेगा, उसका सूचना स्वरूप सारे संसार में एक विचित्र प्रकाश होना आरम्भ हो गया है। अभी ३०, ४० वर्षों में एक परिवर्तन होने वाला है। सारी बातों में परिवर्तन होगा। इसके बाद जो नवीन परिवर्तन होगा, उसमें भारत की सभ्यता ही संसार की सभ्यता होगी। भावीभारत का विज्ञान केवल भारत के लिये ही नहीं होगा, अपितु समूचे संसार के लिये होगा। सारा संसार शांति के गीत गाने के लिये ही छट पटा रहा है, लेकिन दुःख है कि उनकी पाठ्यपुस्तकों में

शान्ति का गीत कहीं भी किन्ही महान् पुरुषों ने न लिखा। इस लिये उनकी अन्तरात्मा इस पाठविधि पढ़ने को लालायित है, जो भारत की पाठविधि है। बस, इसी उद्देश्य से भारत को पूर्ण भारतीय विज्ञानवादियों की तैयारी में लग जाना चाहिये। जो इतने गुरुतर भार को सम्भालने में समर्थ हो सकें। भारतीय शान्तिवादियों में यह सब कुछ सम्भव है, कि शिक्षा, समाज, राजनीति, शिल्प और बाणिज्य आदि सब ही क्षेत्रों में योगियों की अपूर्व प्रतिभाविचित्र सृष्टि तैयार करा सकती है, यह निश्चय है। इस समय भौतिक विज्ञान ने जो कुछ परिश्रम कर दिखाया, वह सब का सब निष्फलता को प्राप्त हो रहा है। अब भगवान योगियों द्वारा ही संसार में एक विचित्र नवीन परिवर्तन कराना चाहते हैं। योग के प्रकाशस्वरूप परिपूर्ण कार्य के ऊपर संसार भविष्यसृष्टि निर्भर करता है। यह कार्य बड़ा विचित्र है। प्राणसंयमीपुरुषों द्वारा ही कर्म तैयार होगा। पूर्णयोगी तैयार हुये बिना कभी भी पूर्ण नहीं हो सकता है। भक्ति एक शक्तिद्वारा संसार में जितने कार्य हुये हैं, वे भगवान् के कार्यों के मामूली, क्षुद्र अंश हैं। लेकिन योगविज्ञान से जो कुछ गुरुतर भार सम्भाला जासकता है, वह भगवान की अद्भुत शक्ति का द्योतक होगा। इस समय प्रयोजन अध्यात्मविज्ञान का है, प्रगाढ़प्रेम का एवं असाधारण शक्ति का, कर्म पूर्णता इसी विज्ञान से होगी। आज-उसी के बिना संसार छटपटा रहा है। हे भारतीयो! अब उस विज्ञानसाधना में लक्ष्य हो जाओ और उसी के सहारे नीरव साधना में चित्त लगा कर कार्य करते

जाओ, जिससे तुम्हें अखिल प्रकृति का ज्ञान हो सके और उसी ज्ञान को दूसरे देश वासियों को दे सको। बाहरी उत्तेजना में न फंस कर भीतर से भगवान का दिव्य सन्देश प्रगट होने दो। जिससे नवीन पदार्थ पैदा होगा, वह संसार की एक अपूर्व सम्पत्ति होगी, तब संसार का अघमर्षण होगा।

भारतीय सभ्यता के पुजारी महान् आत्मायें स्वर्ग से तुम्हारी तरफ निहार रहे हैं, उन्हीं उपदेशों को लेकर तुम अपने कार्य में दत्तचित्त हो जाओ।

गायत्री स्तुति

ॐ स्तुता मया वरदा वेद माता प्रचोदयन्ता पावी मानी
द्विजानम् ।
आयुः प्राणं प्रजा पशु कीर्ति द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ग्र दत्त्वा
व्रजत ब्रह्मलोकम् ॥ अ-का-१६ सं० ७१ मं-१

हे परम पावन सन्ध्या भगवति! तुम ब्रह्म का साक्षात् दर्शन कराने वाली, द्विजों को पवित्र पावन करने वाली, धन और ऐश्वर्य प्रदान करने वाली, परमकीर्ति को देने वाली, पूर्ण वर्चस्विता अर्पण करने वाली हो; आपको अन्तः-करण से प्रणाम करता हूं, कि संसार को इस विशुद्ध पवित्र विज्ञान की ओर प्रेरित कर, ताकि मनुष्यप्राणी ब्रह्मयज्ञ करता हुआ अन्त में शान्ति का शाश्वत् साम्राज्य स्थापित कर सके।

ब्रह्मवित् ब्रह्मैव भवतः

* इति *

विश्वव्यापि सन्ध्या, मूल्य १)

—*:o:*—

प्रथम संस्करण विश्वव्यापि संध्या के विषय में धुरन्धर विद्वानों की सम्मतियां पढ़िये—

श्रीमान् बालकृष्ण पांडे M.A.
प्रिन्सीपल कान्यकुब्ज कालेज,
२५ दि० स० १६३२ ई० लखनऊ।

मैंने विश्वव्यापि संध्या आद्योपान्त पढ़ा, संध्याविषय की कोई ऐसी बात नहीं छोड़ी गई है, प्रत्येक मन्त्र का अनुष्ठान और उसके समाधान बड़ी सरलता से लिखे गये हैं। पुस्तक क्या है, सुखशांति का स्रोत है। कहीं २ छापे की अशुद्धियां अवश्य खटकती हैं।

बालकृष्ण पांडे M.A

श्रीमान् पं० रामदत्तजी शुक्ल M.A. Advocate,
लखनऊ।

अध्यात्म भारत का प्रधान आभूषण है, लेकिन इस विषय में लोगों के विचार जिस तेजी से लोप होते जाते हैं, उसे देख कर सच्चे भारतीयों को उतना ही दुःख भी होता जा रहा है। कहीं २ से इस विषय में बहुत सी पुस्तकें छपी हैं, तथापि पं० केशव शर्मा जी लिखित विश्वव्यापि सन्ध्या देख कर मुझे आश्चर्य हुआ कि कोई ऐसा विषय नहीं जो इस चारमन्त्र सन्ध्या में न समाया गया हो। मुझे आशा है कि यह पुस्तक सर्वमान्य और अग्रगण्य रहेगी।

रामदत्त शुक्ल M.A. Advocate,
30/12/32 लखनऊ।

हिन्दी जगत के प्रख्यात दिग्गज और हिन्दी साहित्य-सम्मेलन ग्वालियर के प्रधान सभापति—

श्रीयुत श्यामबिहारी मिश्र, मिश्रबन्धु-

५ जनवरी स० १६३३ ई०। लखनऊ।

पुस्तक में छापे की अशुद्धियां अवश्य खटकती हैं। लेकिन जो विषय लेकर पुस्तक लिखी गई है उसमें हमारी सम्पूर्ण रूप से सहानुभूति है। क्योंकि सन्ध्या बन्धन ही ऐसा बन्धन है जो मनुष्यजीवन में आनेवाले महान् से महान् बन्धनों को तोड़ डालता है। किस प्रकार तोड़ा जाता है, वह विश्वव्यापि-सन्ध्या पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है। मैं इस पुस्तक के विषय में प्रत्येक भारतीय से शिफारिश करूंगा कि वह इस पुस्तक की एक २ प्रति अपने पास रक्खे।

श्याम विहारी मिश्र (मिश्रबन्धु),

लखनऊ।

और भी कितने ही प्रशंसापत्रों के बंडल हमारे पास मौजूद हैं आप स्वयं पुस्तक अवलोकन करें।

कैलाश योगाश्रम की अन्य पुस्तकें।

जीवनतत्व रक्षाविधि, अर्थात् शीर्षासन, मूल्य ॥=)

बहुतसी पुस्तकें शीर्षासन पर लिखी गई हैं, लेकिन सब पैसा कमाने का ढोंग है। योगसम्बन्धी करामातें भला पैसा कमाने वाला क्या जाने ? साधारण लोगों को क्या ज्ञान है कि शीर्षासन करते समय किस रोग में क्या भोजन पथ्य है ? और किस

प्रकार शीर्षासन करना चाहिये, क्यों शीर्षासन से लाभ के स्थान पर हानि उठाते हैं यह तो एक प्रकार का योग है, जिसकी प्रत्येक क्रिया सावधानी से करनी चाहिये, यह केवल पूर्ण योगी ही जान सकता है। कोई रोग ऐसा नहीं जो शीर्षासन से आराम न किया जासके।

ऐसी सुलभ पुस्तक का मूल्य ।।=) मात्र

योग चन्द्रोदय ।।।) पृष्ठ संख्या १५०

प्राणायाम के अभ्यास से, प्राणायाम की भी वह विधि जो सोते उठते चलते फिरते कर सको, प्रत्येक अंग उपांग को किस प्रकार प्राणशक्ति पहुंचाई जासकती है ? सरल रीति से समझाया गया है ऐसी सर्वाङ्गपूर्ण पुस्तक कहीं नहीं छपी है। चित्र सहित कागज बढ़िया छपाई सफाई दुरुस्त।

आदर्श योग विद्या मूल्य ।)

प्राणायाम से अपने को तथा अपने बच्चों को प्रतापी, पुरुषार्थी, बलवान, तेजस्वी और भीम अर्जुन बनाओ।

पुस्तक मिलने का पता—

कैलाश योगाश्रम,

चमोली जि० गढ़वाल U. P.